Notes

MA- Political Science

Semester - III

Theory and Practice of Diplomacy -I

SYLLABUS & Scheme of Examination

M.A. (IIIrd Sem) POLITICAL SCIENCE

THEORY AND PRACTICE OF DIPLOMACY-I

Time: 3 Hours Max. Marks: 80.

Note: The question paper will be divided into five Units carrying equal marks i.e. 16 Marks for each question. Each of first your units will contain two questions and the students shall be asked to attempt one question from each unit. Unit five shall contain eight short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such, all questions in unit five shall be compulsory.

UNIT-I

Diplomacy: Definition, Origin, Nature, Development, Objectives and Functions of Diplomacy, Decline of Diplomacy and its future.

UNIT-II

Foreign Policy and Diplomacy: Evolution of Diplomatic Practice, Occidental and Oriental Traditions. Old and New Diplomacy, Secret and Open Diplomacy.

UNIT-III

Structure of Diplomatic Practice: Agents, Classification, Immunities and Privileges, Corps Diplomatique, Principles of Precedence and Ranks, Credentials and full power.

The ideal diplomat, functions & Diplomat language of Diplomatic Intercourse, forms and documents.

UNIT-IV

The Organization of Ministry of External affairs in U.S.A. and India, Propaganda in Modern Diplomacy: Diplomacy during War and Peace.

1 राजनय का जन्म, स्वरूप, लक्ष्य, कार्य एवं महत्त्व

[ORIGIN, NATURE, OBJECTIVES, FUNCTIONS AND IMPORTANCE OF DIPLOMACY]

1. राजनय को परिभाषित करें तथा इसके उद्देश्यों का वर्णन करें। (Define the diplomacy and discuss its objectives.)

अथवा

राजनय की परिभाषा दीजिए। पामर और पर्किन्स के विचारों का मुख्य रूप से उल्लेख करते हुए राजनय की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(Define diplomacy. Discuss the characteristics of diplomacy with special reference to the views of Palmer and Perkins.)

अथवा

राजनय की परिभाषा दीजिए। इसके स्वरूप की विवेचना करें। (Define Diplomacy. Discuss its nature.)

अथवा

राजनय का क्या अर्थ है? इसकी विभिन्न विशेषताओं का वर्णन करें। (What is meant by Diplomacy? Discuss its various characteristics.)

अथवा

राजनय की परिभाषा दीजिए। इसकी प्रकृति तथा उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। (Define Diplomacy. Discuss its nature and objectives.)

अथवा

कूटनीति के उद्देश्यों तथा कार्यों का वर्णन करो। (Explain the objectives and functions of Diplomacy.)

उत्तर- कूटनीति और राजनय का एक ही अर्थ है।

विश्व के देश आपसी सहयोग तथा सद्भाव के साथ अपने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का निर्वाह इस प्रकार से करें कि संघर्ष एवं युद्ध के अवसर पैदा न हों। उनके आपसी झगड़ों का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से हो जाए। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को, शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के लिए जिस पद्धति का सहारा लिया जाता है, उसे ही 'कूटनीति' अथवा 'राजनय' की संज्ञा दी जाती है।

एक राष्ट्र आमतौर पर राष्ट्रों के परिवार का पूर्ण तथा सक्रिय सदस्य तभी बन सकता है जब दूसरे राष्ट्र इसे मान्यता दे देते हैं। जिस रूप में मान्यता दी जाती है एवं प्रभाय में आती है, वह है ऐसे निर्णय की घोषणा के बाद राजदूतों का आदान-प्रदान। इस तरह कूटनीति एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने संबंधों के विकास का प्रारंभ करते हैं।

फ्रैंकल के अनुसार, "कूटनीति अलग-अलग राजनीतिक इकाइयों -राज्यों, जिनका सम्पर्क किसी भी स्तर का हो, के सह-

अस्तित्व का अनिवार्य परिणाम है।"

राजनय शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा विदेश नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने वाला महत्त्वपूर्ण साधन है। यह स्थायी शान्ति के पूर्व-प्रतिबन्धों की स्थापना करने वाला एक उपकरण है। राजनय अपने राष्ट्र के राष्ट्रीय हित को दूसरे राष्ट्रों के साथ इस प्रकार से स्थापित करता है कि अपने राष्ट्र का अहित न हो। **मनु** ने अपनी कृति '**मनुस्मृति**' में राजनय के महत्त्व को मान्यता देते हुए कहा है कि, **"राष्ट्रों के बीच युद्ध तथा शान्ति, राजदूतों की भूमिका पर निर्भर करती है।"**

राजनय का शाब्दिक अर्थ (Meaning of Diplomacy)

हिन्दी में डिप्लोमेसी (Diplomacy) शब्द का पर्यायवाची शब्द राजनय लगाया जाता है। अंग्रेजी शब्द डिप्लोमेसी ग्रीक शब्द **डिप्लोर (Diplour)** से निकला है। ग्रीक भाषा में डिप्लोर शब्द का अर्थ '**मोड़ना' या दोहरा करना** होता है। रोमन भाषा में डिप्लोमा (Diploma) शब्द अनुमती-पत्रों या पासपोर्ट के लिए प्रयोग होता था। जो घुतू पत्रों पर खुदे होते थे और मोड़कर या दोहरा करके सड़कों पर चलने वालों को दिये जाते थे। आगे चलकर **अंग्रेजी भाषा में डिप्लोमा शब्द राजकीय पत्रों** के लिए भी प्रयोग होने लगा। समय बीतने के साथ यह शब्द राज्यों के मध्य होने वाली संधियों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। इन संधियों को छाँटने के लिए कुछ सरकारी कर्मचारी भी रखे जाते थे, जो उन्हें पढ़कर समझाने का कार्य करते थे। इस प्रकार के कार्य को राजनयिक कृत्य /राजनयिक व्यवहार कहा जाने लगा। यही कार्य आगे चलकर राजनय या कूटनीति (Diplomacy) कहा जाने लगा।

राजनय की विभिन्न परिभाषाएं -

1. पैडलफोर्ड तथा लिंकन के शब्दों में, "कूटनीति प्रतिनिधित्व करने तथा वार्ता की ऐसी प्रक्रिया है जिससे राष्ट्र शांति के समय एक-दूसरे के साथ परंपरागत तरीके से व्यवहार करते हैं।"

2. सर अर्नेस्ट सैटों के अनुसार, "राजनय स्वतंत्र राज्यों के पारस्परिक राजकीय संबंधों के संचालन में बुद्धि और चातुर्य का प्रयोग है।"

3. **के.एम. पनिकर** के अनुसार, "राजनय अपने हितों का दूसरे देशों से आगे रखने की एक कला है।"

4. हन्स जे. मार्गेन्थो (Morgenthan) के शब्दों में, "राजनय राष्ट्रीय शक्ति के भिन्न तत्त्वों को अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के अनुसार अपने देश के सर्वोत्तम हित के लिए प्रयुक्त करता है। राजनय राष्ट्रीय शक्ति का मस्तिष्क है जैसे कि राष्ट्रीय मनोबल इसकी आत्मा है।" **मार्गेन्थो** ने सूत्र के रूप में यह भी कहा है कि, "राजनय शांतिपूर्ण ढंग से राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देता है।"

राजनय का स्वरूप एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Diplomacy)

राजनय की परिभाषा देते हुए **पन्निकर महोदय** ने कहा है कि "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रयुक्त 'राजनय' अपने हितों को दूसरे देशों से आगे रखने की एक कला है।"

श्री अर्नेस्ट सेन्टो के मतानुसार, "राजनय स्वतंत्र राज्यों के पारस्परिक राजकीय संबंधों के संचालन में बुद्धि (Intelligence) तथा चातुर्य (tact) का प्रयोग करने को कहा जाता है।"

परन्तु पामर तथा परकिन्स (Palmer and Perkins) ने उपर्युक्त परिभाषा के कहा है, "यदि राज्यों के संबंधों में बुद्धि और चातुर्य न रहे तो राजनय ऐसी अवस्था में असंभव बन जाएगा" उन्होंने **राजनय की कुछ विशेषताओं/स्वरूप** का भी उल्लेख किया है जो निम्नलिखित प्रकार की हैं-

1. राजनय अनैतिक नहीं (Diplomacy is not Immoral)-राजनय न तो छल-कपट की कला है, न प्रचार की व्यवस्था और न ही यह अनैतिक होती है।

2. राजनय अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की एक संस्था या मशीनरी है (Diplomacy is an Institution or Machinery of International Relations)-राजनय अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का संचालन करने वाला एक उपकरण है। इसमें राष्ट्रों के बीच संबंधों का संचालन करने का ढंग तथा प्रक्रिया शामिल होती है। राजनय किसी भी मशीन की भांति अपने आप में ही नैतिक या अनैतिक नहीं होती। इसका उपभोग एवं लाभ इसको प्रयोग करने वाले के उद्देश्यों तथा योग्यताओं पर निर्भर करता है।

3. राजनय द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय (Diplomacy is both Bilateral and Multilateral)-राजनय संगठित रूप में कार्य करता है। यह विदेशी कार्यालयों, दूतावासों, वाणिज्य कार्यालयों और विश्वव्यापी संस्थाओं के द्वारा कार्य करती है। राजनय साधारणतः द्विपक्षीय होती है किन्तु आजकल राजनय के बहुपक्षीय रूप का महत्त्व बढ़ गया है।

4. राजनय के पीछे हमेशा राष्ट्रीय शक्ति होती है (Diplomacy is always backed by National Power)-राजनय के पीछे हमेशा राष्ट्रीय शक्ति होती है। राजनय अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति प्रयोग के लिए धमकी और प्रभाव दोनों का प्रयोग साधन के रूप में करता है। यह बल या हिंसा का प्रयोग नहीं कर सकता है, कूटनीति चेतावनी दे सकता है, धमकियां दे सकता है तथा सजा की धमकी दे सकती है, परन्तु इसके अतिरिक्त यह बल का प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं कर सकता है। राजनय का अर्थ है, "शांतिपूर्ण ढंगों द्वारा राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति।"

5. राजनय द्वारा सभी प्रकार के कार्य (Diplomacy handles all types of matters)-राजनय में बहुत से हित-क्षेत्र सम्मिलित होते हैं-राष्ट्रों के संबंधों में, साधारण विषय से लेकर शांति और युद्ध जैसे बड़े-बड़े विषय राजनय के कार्यक्षेत्र में शामिल होते हैं। राजनय द्वारा राष्ट्रीय हित के सभी कार्य किए जाते हैं।

राजनय के उद्देश्य (Objects of Diplomacy)

व्यापक रूप में राजनय अपने राष्ट्र के लिए **दो प्रकार के मुख्य उद्देश्य** प्राप्त करने का प्रयत्न करता है-

(i) राजनीतिक उद्देश्य

(ii) गैर-राजनीतिक उद्देश्य ।

(i) राजनीतिक उद्देश्य (Political Objectives)- राजनय हमेशा विदेश नीति द्वारा परिभाषित किए गए राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। राष्ट्र का मुख्य हित अपनी राष्ट्रीय शक्ति को बनाए रखना और उसे बढ़ाना होता है, इसलिए विदेश नीति हमेशा अपने राष्ट्र के प्रभाव क्षेत्र में विस्तार को महत्त्वपूर्ण लक्ष्य मानती है। इसीलिए विदेश नीति के अनुसार चलने वाला राजनय दूसरे राज्यों पर अपने राज्य के प्रभाव को बढ़ाने की कोशिश करता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राजनय अनुनय, सहायता, पुरस्कारों के वायदों आदि साधनों का प्रयोग करता है।

(ii) गैर-राजनीतिक उद्देश्य (Non-Political Objectives) — वर्तमान समय में सभी राष्ट्र एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। हर एक राज्य अपनी आर्थिक, औद्योगिक और व्यापारिक आवश्यकताओं के लिए एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। विज्ञान, तकनीकी और औद्योगीकरण के इस युग में आर्थिक कूटनीति इसका अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण पहलू बन गया है। राजनय अपने राष्ट्र के हितों को प्रोत्साहन देने के लिए आर्थिक साधनों पर निर्भर करता है तथा आर्थिक हित निश्चय ही राजनय के महत्त्वपूर्ण गैर-राजनीतिक उद्देश्य होते हैं।

राजनय के उद्देश्य—

1. मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रोत्साहन (Promoting Friendly Relations)-आज प्रत्येक राज्य का उद्देश्य दूसरे राज्यों के साथ अच्छे संबंध, सामान्य हित वाले देशों के साथ मित्रता में वृद्धि और अन्य देशों की सद्भावना प्राप्त करना होता है। यह राजनय के नियमित और दृढ़ प्रयत्नों का ही परिणाम है कि कटु-से-कटु देशों के बीच मैत्री संभव होती है। राजनय अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए मित्र देशों के साथ अपने मैत्री संबंधों को दृढ़ बनाता है। वह संधि-वार्ता द्वारा अपने समर्थकों की संख्या में वृद्धि करता है। जिन राज्यों के राष्ट्रीय हित परस्पर विरोधी होते हैं उनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की संभावना कम ही होती है। ऐसी

स्थिति में राजनय का लक्ष्य ऐसी शक्तियों को तटस्थ बनाना होता है ताकि वे उसके राष्ट्रीय हितों को नुकसान न पहुँचा सकें।

2. राष्ट्रीय हितों की रक्षा (To Safeguard the National Interests)- राजनय का एक अन्य लक्ष्य अपने राज्य के हितों की रक्षा करना है। प्रत्येक राष्ट्र का मूलभूत उद्देश्य सीमाओं की रक्षा, आर्थिक हित, व्यापार और राष्ट्र की रक्षा करना होता है और यह कार्य राजनय द्वारा पूरा होता है। वर्तमान युग में प्रत्येक राज्य अपने देश की संस्कृति तथा जीवनयापन के ढंगों का प्रचार दूसरे राज्यों में करना चाहता है ताकि उसे अन्य देशों की नजरों में सम्मान हासिल हो सके तथा अन्य राज्यों के साथ मित्रतापूर्ण और सद्भावनापूर्ण संबंध स्थापित हो सकें। यह केवल राजनय द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

3. युद्ध को रोकना (Prevention of War)-राजनय की युद्ध को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। युद्ध प्रायः होते रहते हैं। यदि युद्ध छिड़ ही जाए तो राजनय के दायित्व का रूप बदल जाता है। युद्ध को रोकने और युद्ध के दौरान राजनय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। के. एम. पन्निकर के शब्दों में, "प्रभावशाली राजनय के बिना न तो युद्ध लड़े जा सकते हैं और न जीते जा सकते हैं।

4. शांति स्थापना (Establishment of Peace)- राजनय का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य शाति की स्थापना है। राजनय के माध्यम से ही विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है। टेलर के अनुसार, "राजनय ने हमें उतने समय के लिए शांतिपूर्ण रहने में सहायता दी है जितने समय के लिए हमने 'शांतिपूर्ण रहना चाहा है।"

5. विरोधी शक्तियों के गठबंधन को रोकना (To Prevent other States for Combining against it)-राजनय का एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह भी कि अपने राज्य के विरुद्ध संगठनों को रोका जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ राज्यों के साथ समझौते किये जाते हैं, कुछ को समर्थन दिया जाता है और कुछ राज्यों से सहायता तथा समर्थन रोका जाता है इसका प्रयोग स्वयं दाता राज्य के राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध करते हैं।

6. सद्भावना की स्थापना (To Establish Goodwill)-राजनय को अपने सभी साधनों द्वारा राष्ट्रीय हित को उपलब्धि के लिए दूसरे देशों के साथ सद्भावनापूर्ण संबंध स्थापित करने चाहिए। सभावित शत्रु देश के साथ भी सद्भावना की स्थापना करनी चाहिए ताकि यदि उस देश की नीति को यदि न भी बदला जा सके ती कम-से-कम उस देश में अपने समर्थन में एक वर्ग तैयार किया जा सके।

7. पारस्परिक आदान-प्रदान (Mutual Give and Take)- राजनय अपने मुख्य लक्ष्य अर्थात् राष्ट्र की सुरक्षा हेतु पारस्परिक आदान-प्रदान की नीति का अनुसरण करता है। एक सफल राजनय को व्यावहारिक होना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक राज्य का अपना जीवन-दर्शन होता है, इसलिए राजनय को दूसरे राज्यों पर नैतिक निर्णय नहीं देने चाहिए। यदि इस राजनीतिक यथार्थ को स्वीकार कर लिया जाए तभी अन्य देशों के साथ राजनीतिक व्यवहार स्थापित किया जा सकता है।

8. राष्ट्रीय शक्ति (National Power)-वास्तव में राजनय राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि का सबसे अधिक प्रभावशाली साधन है। मोंगेन्यो के शब्दों में, "राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण में जो भी तत्त्व योगदान देते हैं उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व राजनय अथवा कूटनीति की उत्तमता है, भले ही यह तत्त्व कितना अस्थायी क्यों न हो। राजनय वह कला है जिसके द्वारा राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न तत्त्वों को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय हितों से संबंधित मामलों में अत्यधिक प्रभावी रूप से प्रयोग में लाया जा सकता है।"

9. आर्थिक एवं व्यावसायिक लक्ष्य (Economic and Commercial Objectives)- वर्तमान युग में राजनय के गैर-राजनीतिक लक्ष्यों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इसमें आर्थिक और व्यावसायिक लक्ष्यों का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक राज्य का राजपद अन्य देशों में अपने उत्पादनों के लिए बाजार की खोज करता है, स्पर्द्धा को घटाता है, आर्थिक सतर्कता रखता है और अपने हितों की रक्षा के लिए अनेक उचित और प्रभावशाली कदम उठाता है। पनिक्कर के अनुसार, "पिछले तीस वर्षों में व्यावसायिक राजनय (Commercial Diplomacy) अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का एक सर्वाधिक पहलू बन गया है।"

10. समस्याओं का समाधान (Solution of Problems)-राजनय एक ऐसा उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा समस्याओं का समाधान किया जाता है। डॉ. एम.पी. राय के अनुसार, "राजनय के माध्यम से की गई समस्या के हल के लिए

किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन अववा बैठक का व्यय एक छोटे-से-छोटे युद्ध के व्यय से कहीं कम होता है।"

11. राज्य के स्थायी हितों की पूर्ति (Serving of the Permanent Interests of the State)-राजनय का एक अन्य लक्ष्य राज्य के स्थायी हितों की पूर्ति करना होता है। अनेक बार अस्थायी लाभों की प्राप्ति के लिए सीदेवाजी की जाती है। जनता के दबाव के कारण सरकार को कुछ समय के लिए स्थायी हितों को छोड़कर अन्य हितों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करनी पड़ता है। भावनाओं पर आधारित जन-प्रतिक्रिया के दबाव में राज्य को यदि अपनी विदेश नीति अथवा राजनय को बदलना पड़े तो वह अत्यंत हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

12. राष्ट्रीय मनोबल (National Morale)-राजनय का महत्त्व इस बात में भी है कि इसके माध्यम से राजनयिक विजय राष्ट्रीय मनोबल को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध होती है। डॉ. एम.पी. राय ने लिखा है, "शिमला तथा दिल्ली में किए गए समझौतों को पाकिस्तान ने अपनी राजनयिक विजय बताई थी। प्रत्येक सैनिक पराजय के पश्चात् इन्हीं राजनयिक विजयों ने पाकिस्तान के गिरते हुए मनोबल को ऊँचा उठाया था।"

वास्तव में राजनय द्वारा बहुत सारे उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

राजनय का महत्त्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राजनय का स्थान

(Significance of Diplomacy & Place of Diplomacy in International Politics)

2. आज के विश्व में शांतिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था बनाए रखने के साधन के रूप में राजनय के महत्त्व का समीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए। (Critically analyse the importance of Diplomacy as an instrument of maintenance of Peaceful International Order in the World of today.)

अथवा

वर्तमान विश्व में राजनय के महत्त्व पर समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए। (Write a Critical note on the importance of diplomacy in the present day World.)

उत्तर- आज के विश्व में शांतिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था बनाए रखने के साधन के रूप में राजनय का बहुत अधिक महत्त्व है। राजनय के माध्यम से ही जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान निकल सकता है। यही एक मात्र ऐसा साधन है, जो सभी को उपलब्ध है तथा इसके उचित प्रयोग से ही विश्व में शान्ति और व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। राजनय के माध्यम से राज्य अपने प्राथमिक उद्देश्यों तथा राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करते हैं। मार्गेन्थो के अनुसार राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण में सहायक तत्त्वों में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व राजनय या कूटनीति की उत्तमता है। है। राजनय की सफलता का आधार समझौते होने के पैमाने से बनाया जा सकता है। परिणामस्वरूप राजनय का महत्त्व कुछ ठोस समझौतों के मूल्यों से नापा जा सकता है। इस प्रकार वास्तव में राजनय की सफलता ही राजनय के महत्त्व की कसौटी है।

अब हम राजनय के महत्त्व को और स्पष्ट करने के लिए इसके निम्नलिखित कार्यों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

एक **भूतपूर्व अमेरिकी राजदूत लियो बी. पौलाड (Leou B. Poullada)** ने अपने एक लेख में 'Diplomacy: The Missing Link in the Study of International Politics, में राजनय के महत्व को दिखाने वाले पाँच कार्यों का उल्लेख किया है-

1. संघर्ष का प्रबंध (The Management of Conflict)

2. समस्या समाधान (Problem Solving)

3. परा-सांस्कृतिक कार्य (Trans-Cultural Functions)

4. समझौता-वार्ता और सौदेबाजी (Negotiations and Bargaining)

5. कार्यक्रम व्यवस्था (Programme Management)

1. संघर्ष का प्रबंध (The Management of Conflict)-राजनय का एक प्रमुख मूलभूत कार्य संघर्ष का प्रबंध है अर्थात् जहाँ कहीं हितों का भारी टकराव हो वहाँ एक कूटनीतिज्ञ का समझाने-बुझाने, सौदेबाजी करने, सुलह कराने आदि विभिन्न उपायों द्वारा संघर्षपूर्ण स्थितियों के समाधान में प्रवृत्त होना चाहिए। घरेलू क्षेत्र में पेशवर राजनीतिज्ञ जिस प्रकार इन कार्यों का निर्वहन करते हैं उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में कूटनीतिज्ञ इन कार्यों का निर्वहन विभिन्न संस्कृतियों और मूल्य-व्यवस्थाओं के संदर्भ में करते हैं और इस हैसियत से वे मुख्यतया एक 'परा-सांस्कृतिक संघर्ष दलाल' (Trans-Cultural Conflict Broker) की भूमिका निभाते हैं। एक कूटनीतिज्ञ यद्यपि प्रधान रूप से अपने देश के हितों का प्रतिनिधित्व करता है लेकिन वह इस बात से भी परिचित होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई भी पक्ष पूर्ण 'सही' होने का दावा नहीं कर सकता और बहुधा ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जब हितों में सामंजस्य बैठाना पड़ता है।

2. समस्या समाधान (Problem Solving)- मूलभूत राजनयिक गतिविधि का दूसरा क्षेत्र समस्या समाधान है। विदेश-संबंधों के संचालन में अनेक समस्याएँ और कठिनाइयों उपस्थित होती हैं तथा कई बार सीमांत पसंदगियों (Marginal Choices) को चुनने की स्थिति उत्पन्न होती है। अतः कूटनीतिज्ञ का प्रतिवेदन संबंधी काम सुगम नहीं होता। देखने में प्रतिवेदन तथ्यों के संग्रह का सीधा-साधा काम लगता है, किन्तु यह आवश्यक रुप से समस्या समाधान का एक अभ्यास क्रम है। समस्या समाधान की दिशा में गंभीर सैद्धान्तिक कार्य किसी भी कूटनीतिज्ञ के लिए मूल्यवान हैं क्योंकि इससे न केवल संघर्ष प्रबंध (Conflict Management) में सहायता मिलती है, बल्कि सहयोग के उन क्षेत्रों में भी जिनमें हितों का कोई संघर्ष नहीं होता, समस्याओं के समाधान में मदद मिलती है।

3. परा-सांस्कृतिक कार्य (Trans-Cultural Functions)- मूलभूत राजनयिक गतिविधि का तीसरा क्षेत्र राजनयिक व्यवसाय के परा-सांस्कृतिक कार्यों पर केन्द्रित है। कूटनीतिज्ञ के कार्य का यह पहलू उसके व्यवसाय को एक अद्भुत स्वरूप प्रदान करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी कूटनीतिज्ञ परा-सांस्कृतिक कार्यों में निपुण होते हैं। इसका आशय केवल यही है कि उन्हें इस कार्य में निपुण होना चाहिए। विभिन्न संस्कृतियों के मध्य कार्य करते हुए भी कूटनीतिज्ञ अपने राष्ट्रीय हित के सम्बर्द्धन में लगा रहता है। अन्योन्य सांस्कृतिक व्यवस्था (Cross-Cultural Interpretation) कूटनीतिज्ञ का एक आधारभूत व्यावसायिक कार्य है।

4. समझौता वार्ता और सौदेबाजी (Negotiations and Bargaining)-कूटनीतिज्ञ का चौथा मूलभूत कार्य समझौता-वार्ता और सौदेबाजी है। समझौता-वार्ता केवल अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंसों में ही नहीं होती बल्कि कूटनीतिज्ञ अपने दैनिक कार्यों में विभिन्न तरीकों से विचार-विमर्श, सौदेबाजी और समझौते संबंधी कार्यों में लगा रहता है। एक छोटे धरातल पर आरंभ में वह जिस सहयोगपूर्ण और मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण करता है वही वातावरण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के वृहत्तर रंगमंच पर सहयोग और मैत्री के लिए आधार-स्थल का काम करता है।

5. कार्यक्रम व्यवस्था (Programme Management)- वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ इस कार्य द्वारा राष्ट्रीय हित की अभिवृद्धि के लिए तथा सहयोग और मित्रता के विकास के लिए बहुत कुछ करते हैं। विदेशों में अपने देश के किसी कार्यक्रम के प्रबंध की कुशलता का वैदेशिक संबंधों के संचालन पर काफी प्रभाव पड़ता है। उसके माध्यम से विदेशों में देश की प्रतिष्ठा बढ़ाई जाती है। आज के युग में इस प्रकार के कार्यक्रमों का महत्त्व द्वि-राष्ट्रीय और बहु-राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है।

सामान्य कार्य

1. हितों की रक्षा (Protection of Interests)-राजनय का प्रमुख कार्य यह है कि अपने देश के अधिकारों और हितों की रक्षा तथा वृद्धि कर हितों की रक्षा करना राजनय का कार्य है। **प्रो. ओपनहीम** के अनुसार, "राजनयिक दूतों का यह मुख्य कार्य है कि वे अपने देशवासियों की संपत्ति, जीवन एवं हितों की रक्षा करें जो स्वागतकर्ता राज्य की सीमा में बसते हैं।" कूटनीतिज्ञ

हमेशा विदेश में बसने वाले अपने देश के लोगों तथा अपने राष्ट्र के हितों को प्रोत्साहन देने तथा उनकी सुरक्षा का कार्य करते हैं। "हितों की सुरक्षा कूटनीति की प्रक्रिया की आधारशिला है।"

2. अवसरात्मक प्रतीकात्मक कार्य (Ceremonial/Symbolic Functions)-किसी राष्ट्र का कूटनीतिज्ञ उस राष्ट्र की प्रभुसत्ता का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार वह अपनी सरकार तथा देश का औपचारिक समारोहों में तथा साथ ही साथ अनौपचारिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसरों के जो उसकी नौकरी वाली जगह में होते हैं, प्रतिनिधित्व करता है। इन प्रतीकात्मक कार्यों के महत्त्व का विश्लेषण करते हुए **मार्गेन्थो ने** उचित कहा है कि, "विदेशों में अपने देश के मान तथा जिस देश में कूटनीतिज्ञ को भेजा गया है उस देश के लिए उसके अपने देश में कितना सम्मान तथा लोकप्रियता है, का विश्लेषण करने के लिए यह प्रतीकात्मक कार्य के अवसर प्रदान करते हैं।"

3. प्रतिनिधित्व (Representation)- एक राजदूत विदेश में अपने राष्ट्र का औपचारिक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने देश तथा उस देश के बीच, जिसमें उस निर्धारित किया गया है, में एक संचार प्रतिनिधि होता है। पामर तथा पर्किन्स के अनुसार, "कूटनीतिज्ञ जिस देश में ठहरा हुआ होता है उस देश के नागरिकों के लिए वह ही देश होता है जिसका वह प्रतिनिधि करता है तथा उसके देश का अनुमान उसके व्यक्तिगत क्रिया-कलापों में लगाया जाता है।" उसका प्रतिनिधित्व वैध और राजनीतिक होता है। वह अपने राष्ट्र के नाम पर बोट भी दे सकता है। निःसंदेह ऐसा करते समय वह अपने देश की सरकार के निर्देशों एवं विदेश नीति से पूरी तरह जुड़ा हुआ होता है।

4. समझौता वार्ता (Negotiations)-राजनय का यह कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जॉर्ज ए. कैथन ने इसे मुख्य राजनयिक कार्य कहा है। राजनयज्ञ व्यक्तिगत रूप से किसी राज्य के साथ समझौता वार्ता करता है अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अनेक राज्यों के साथ वार्ता करता हैं। दोनों ही अवसरों पर वह अपने राष्ट्रीय हित में यह कार्य करता है। कूटनीतिज्ञ समझौता वार्ताकार होते हैं।

5. प्रतिवेदन (Reporting)- राजनयज्ञों की सहायता से एक देश की सरकार अपने विदेशी मामलों का कूटनीति संबंधों के विकास में सहायक बन सकती है, संचालन कर पाती है। प्रत्येक राजनयिक मिशन अपने देश को सामयिक प्रतिवेदन भेजता रहता है। प्रतिवेदन का अर्थ है— स्वागतकर्ता राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य तथा सामाजिक परिस्थितियों का बारीकी से अध्ययन तथा अपनें राष्ट्र को ठीक-ठीक सूचना देना। राजनीतिक प्रतिवेदन का अर्थ है स्वागतकर्ता राष्ट्र की राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका।

आर्थिक प्रतिवेदन का अर्थ — मेजबान देश की आर्थिक स्थिति तथा व्यापार की संभावित शक्ति के बारे में, अपने राष्ट्र को सूचना देना। सैनिक प्रतिवेदन का अर्थ है — मेजबान देश की सैनिक शक्ति, उनका इरादों तथा समर्थताओं तथा इसके साथ-साथ मेजबान देश के सामरिक महत्त्व (Strategic Importance) के बारे में आंकलन करना। सैन्य सहचारी (Military Attaches) स्वागतकर्ता देश की सैनिक - शक्ति के बारे में सूचना इकट्ठी करने में संलग्न रहते हैं। वुल्फ तथा कोलोम्बिस (Wolfe and Columbis) के अनुसार, "सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रतिवेदन सहायक महत्त्व के होते हैं जो कभी-कभी राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक मामलों के बारे में वर्णन करने की सीमा तक चले जाते हैं।"

निष्कर्ष (Conclusion)- इन सभी कार्यों के द्वारा राजनय अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में विशेषतया राष्ट्र की विदेश नीति का निर्माण तथा उसे लागू करने के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मार्गेन्थो ने ठीक ही लिखा है कि, "जिस तरह विदेश कार्यालय विदेश नीति का मुख्य केन्द्र है उसी प्रकार कूटनीति प्रतिनिधि भी एक ऐसा धागा होता है, जो अपने देश के केन्द्र को बाहरी विश्व से बांधता है।"

राजनय का ह्रास तथा भविष्य [DECLINE AND FUTURE OF DIPLOMACY]

प्र- राजनय के ह्रास की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में राजनय के भविष्य का मूल्यांकन करें।

(Discuss the main features for the decline of Diplomacy. Also assess the future of diplomacy in International Relations.)

अथवा

राजनय के ह्रास के कारणों का विश्लेषण करें। राजनय के भविष्य का मूल्यांकन करें। (Discuss the factors that are responsible for the decline of Diplomacy. Also assess the future of Diplomacy.)

अथवा

राजनय के पतन के उत्तरदायी कारण क्या हैं? विस्तार से व्याख्या कीजिए ।

(What are the factors responsible for the decline of Diplomacy? Discuss this in detail.)

उत्तर- दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद के समय में राजनय का काफी हास हुआ। राजनय संबंधी कार्य विदेश मंत्रियों और राज्याध्यक्षों के निजी प्रतिनिधियों द्वारा नहीं बल्कि स्वयं राज्याध्यक्षों द्वारा किया जाने लगा। परिणामस्वरूप विदेश नीति और राजनय में जो अन्तर था वह बड़ा धूमिल हो गया क्योंकि नीति निर्माताओं ने ही राजनय का कार्य करना भी आरंभ कर दिया। राष्ट्रीय हित के उपकरण के रूप में रजनय की भूमिका तथा शक्ति प्रबंध के साधन के रूप में इसे बहुत धक्का लगा। मार्गेन्थो के शब्दों में, "द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद से कूटनीति अपना महत्त्व खो चुकी है। इसके कार्य अब इतने कम रह गए हैं कि उतने राज्य व्यवस्था के इतिहास में पहले कभी नहीं रहे।"

मार्गेन्थो ने राजनय के महत्त्व को कम करने के पाँच कारणों को उत्तरदायी ठहराया है-

1. संचार साधनों का विकास (Development of Means of Communication) - ऐसा माना जाता है कि राजनय का अस्तित्व संचार साधनों के अभाव के कारण था। प्रत्येक राज्य को अन्य राज्यों के साथ राजनीतिक संबंध बनाए रखने के लिए राजदूत की जरूरत होती थी जो अपने राज्य को व्यक्तिगत तौर पर सूचित रखकर उसके हितों की रक्षा कर सके। उस समय संदेशों को जल्दी भेजने की कोई सुविधा नहीं थी। परन्तु आधुनिक युग में संचार साधनों में क्रांतिकारी सुधार हो जाने की वजह से विदेशालय के किसी भी अधिकारी के लिए अपने समक्ष दूसरे अधिकारी से दूरभाष पर बात करना बहुत सरल हो गया है।

2. राजनय का हास (Depreciation of Diplomacy)-प्रथम महायुद्ध के अंत में ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि राजनय बजाय विश्व शांति को बढ़ावा देने के उल्टा इसे खतरे में डाल रहा था। इस विचार को और भी बल मिला जबकि यह देखा गया कि प्रथम महायुद्ध का यदि सारा नहीं तो कुछ दायित्व राजनयज्ञों द्वारा किए गए गोपनीय गठजोड़ों का था। अब बहुत से लोग यह महसूस करने लगे थे कि राजनय विश्व-शांति को बनाए रखने का अप्रभावशाली उपकरण है। कुछ तो इसे शांति को खतरा पैदा करने वाले खतरनाक साधन तक मानने लगे थे। राजनय का उदय राष्ट्र-राज्यों के उत्थान के समय में हुआ था इसलिए अन्तर्राष्ट्रवाद के इस युग में यह शक्ति-राजनीति का एक ऐसा साधन बन गई थी जिसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

3. नई कूटनीति का आगमन (Advent of New Diplomacy)-गोपनीय अथवा गुप्त राजनय के प्रति प्रतिक्रिया हुई। इसके स्थान पर राष्ट्रसंघ और बाद में संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से राजनय की एक नई पद्धति विकसित हुई जिसे 'खुली राजनय' या 'संसदीय प्रक्रियाओं द्वारा राजनय' की संज्ञा दी गयी। इन संस्थाओं के द्वारा खुले राजनय को बल मिला। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं इन संस्थाओं की कार्य सूची में रखी जाती हैं तथा उन पर भिन्न-भिन्न सरकारों के प्रतिनिधि सार्वजनिक तौर पर वाद-विवाद करते हैं। नई कूटनीति, विशेषतया संसदीय कूटनीति, सम्मेलन कूटनीति तथा व्यक्तिगत कूटनीति का उदय भी कूटनीति के हास का कारण बना।

4. कूटनीति में नवागन्तुक (New Comers in Diplomacy)-दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका तथा सोवियत संघ दो महाशक्तियों के रूप में उभर कर सामने आए तथा 1945 के बाद के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में महाकार्यकर्ताओं के रूप में उदय भी कूटनीति को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। पहले अमेरिका केवल अमेरिका के मामलों पर केन्द्रित था और उसने

अलगावाद की नीति अपनाई हुई थी। उधर सोवियत संघ 1917 के बाद यूरोपीय राजनीति से काफी अलग रहा था। जब 1945 के बाद के काल में ये दोनों शक्तियों महाशक्तियों के रूप में उभर कर सामने आई तो उनके लिए संबंधों का संचालन करने के लिए राजनव का सहारा लेना बहुत कठिन था। शीत युद्ध के दौरान दोनों महाशक्तियों ने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक उपकरणों पर अधिक निर्भर रहने लगीं। उन्होंने संबंधों का संचालन करने के लिए राजनय को कम महत्त्व देना आरंभ किया। परिणामस्वरूप राजनय का हास होने लगा।

5. युद्धोत्तर विश्व राजनीति का स्वरूप (The Nature of Post World War Politics)-राजनय के हास का एक अन्य कारण युद्धोत्तर विश्व राजनीति का स्वरूप है। दो महाशक्तियां, परमाणु शस्त्र, शीतयुद्ध, शक्ति संतुलन की समाप्ति, नए राष्ट्र, संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों आदि के उदय न युद्धोत्तर काल के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को पूर्ण रूप से बदल दिया और इसके प्रभाव के परिणामस्वरूप राजनय भी परिवर्तित हो गया।

ऐसा महसूस किया जाने लगा कि अब राजनय का युग बीत गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसी प्रवृत्ति भविष्य में समाप्त हो जायेगी और राजनय को फिर दोबारा अपना पुराना महत्त्व प्राप्त हो जायेगा। परन्तु यदि राजनय स्वतंत्रतापूर्ण कार्य करना चाहता है तो इसे अनेक अड़चनों और बाधाओं को दूर करना होगा।

राजन्य का भविष्य(Future of Diplomacy)

प्रत्येक वस्तु, विचार, सिद्धान्त आदि में गुण-दोष होते हैं। राजनय भी इसका अपवाद नहीं है। इसमें संदेह नहीं है कि कतिपय (कुछ) दोष होते हुए भी इसका भविष्य उज्ज्वल कहा जाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि परम्परागत राजनय के विषय में तथा उसके परिणामों को लेकर जो आशंकाएँ, धारणाएँ तथा दुर्भावनाएँ जन-मानस में घर कर गई हैं, उन्हें दूर किया जाए। राजनय को अलोकप्रिय बनाने के आधारभूत जो उत्तरदायी कारण हैं, उन पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

जैसे- (i) राजनय की लोकप्रिय सार्वजनिक व्यवस्था का आग्रह, (ii) राष्ट्रों या राजनयिकों के शिखर सम्मेलन होना, (iii) राजनयिकों के द्वारा दूसरों की भावनाओं की उपेक्षा कर उत्तेजनापूर्ण भाषण देने की प्रवृत्ति, (iv) समाचार-पत्रों में आकर्षक एवं भावोत्तेजक शीर्षक-देना। इनसे राजनय के क्षेत्र में भ्रान्ति फैलती है। वस्तुतः राजनय का क्षेत्र सद्भावना उत्पन्न करने के लिए है। इससे विश्व शान्ति में प्रगति होती है। अतः राजनय के भविष्य को उज्ज्वल करने के हेतु निम्नलिखित सूत्रों को महत्त्व दिया जाना चाहिए-

1. व्यावसायिक राजनय को अव्यावसायिक राजनय की तुलना में अधिक महत्त्व मिलना चाहिए। अव्यावसायिक नियुक्तियाँ करनी यदि बहुत आवश्यक हों, तभी की जानी चाहिए।

2. संबंधों तथा संधियों में यथासंभव गोपनीयता रखनी चाहिए।

3. वार्ताएँ करने का अधिकार उन राजदूतों को देना हितकर है, जो योग्य प्रशिक्षित अनुभवी हों, अन्यथा वार्ता असफल या अहितकर होगी।

4. वार्ताकार को सस्ती लोकप्रियता से बचना चाहिए, उसमें असीम धैर्य की अपेक्षा है। आत्म-नियंत्रण वार्ताकार का प्रमुख गुण है।

5. राजनेताओं को अधिक यात्राएँ नहीं करनी चाहिए और सार्वजनिक मंचों से दूसरों की कटु आलोचनाओं से बचना चाहिए।

6. एनडू शानफील्ड का कथन है कि दूतावासों की संख्या कम-से-कम हो। अमेरिका, जापान, रूस जैसे देशों में दूतावास खोले जा सकते हैं। छोटे देशों में (अविकसित देशों में) सामूहिक दूतावास खोले जा सकते हैं।

7. जर्मनी की एक समिति ने क्षेत्रीय दूतावास खोलने की राय दी थी और यथासंभव उनमें दो ही व्यक्ति कार्य करें ऐसा परामर्श दिया।

8. राजदूतों की आयु सीमा पर भी कार्यकुशलता को लेकर विचार करना आवश्यक है। इस आधार पर 40 या 50 वर्ष की आयु पार करने पर अकुशल राजनयिकों को सेवा निवृत्त कर देना चाहिए। उनकी सेवा आयु की अवधि में 60 वर्ष से अधिक की वृद्धि किसी भी परिस्थिति में अमान्य है। इससे तरुणों को पदोन्नति के अवसर मिलते रहेंगे।

9. विदेश-विभाग के कार्यालयों को नए भवनों में तथा नवीन स्थानों पर बार-बार स्थानातंरित नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार राजदूतों का स्थानान्तरण भी दो-तीन वर्षों में नहीं करना चाहिए, क्योंकि नए राजदूतों को इतना समय तो काम सीखने में लग जाता है। इससे गुणवत्ता और कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है। एक राजदूत का कम-से-कम चार वर्षों तक, एक स्थान पर रहना नितांत आवश्यक है।

10. मैक डरमोट ने अपनी पुस्तक न्यू डिप्लोमेसी (New Diplomacy) में कहा है कि राजनय को प्रभावक बनाने के लिए राजदूतों को समय-समय पर दूसरे विभागों, व्यवसायों, उद्योगों, प्रतिरक्षा, व्यापार, वाणिज्य, विदेश मंत्रालय आदि में कार्य करने की सुविधा दी जानी चाहिए। इससे उनके लोक जीवन संबंधी ज्ञान तथा अनुभवों में आशातीत वृद्धि होगी। इस प्रकार पूर्व पठित पाठ की पुनरावृत्ति (दोहराना) की भाँति उनमें नई ऊर्जा एवं स्फूर्ति का संचार होगा।

'संक्षेप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि थोडी सावधानी का प्रयोग करें, तो राजनय का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है, क्योंकि राजनय पर भावी विश्व-शान्ति अवलम्बित है। यही एकमात्र ऐसा विकल्प है जिस पर मानव निर्भर कर सकता है। राजनय शक्ति के संघर्ष का एक चिह्न है और यह तब तक बना रहेगा जब तक राष्ट्र-राज्य प्रणाली विद्यमान है। राजनय टकरावों को दूर करने के लिए और शांति को सुनिश्चित करने के लिए अपनी भूमिका निभाता रहेगा।

3 विदेश-नीति एवं राजनय [FOREIGN POLICY AND DIPLOMACY]

प्रश्न — राजनय और विदेश नीति में समानताओं और असमानताओं को स्पष्ट कीजिए। (Explain the similarities and disserences between diplomacy and foreign policy.)

अथवा

विदेश नीति और राजनय में क्या संबंध है? इसका विस्तार से वर्णन करें। (What is the relationship between Foreign Policy and Diplomacy? Explain.)

अथवा

राजनय राज्य की विदेश नीति के उद्देश्यों को किस प्रकार बढ़ाता है? वर्णन करें। (How does Diplomacy promote the goals of Foreign Policy? Explain.)

उत्तर- विदेश नीति एवं राजनय दो ऐसे पहिए हैं जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की गाड़ी को आगे बढ़ाया जाता है। वर्तमान काल में प्रत्येक राज्य की कोई न कोई विदेश नीति होती है और उसे क्रियान्वित करने के लिए उसी के अनुरूप राजनय को आचरण करना पड़ता है। विदेश नीति और राजनय इतनी घनिष्ठता से एक-दूसरे के साथ संबंधित हैं कि आम भाषा में दोनों ही एक-दूसरे के पर्यायवाची भी कहे जाते हैं। यह कथन है कि "ब्रिटिश कूटनीति मध्य-पूर्व में कम शक्तिशाली है।" कूटनीति और विदेश नीति को एक साथ ही मिला देता है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यह कोई स्वीकृत प्रस्ताव नहीं है। विदेश नीति और राजनय के संबंधों को जानने से पहले हम विदेश नीति और राजनय के अर्थों को समझना चाहेंगे।

विदेश नीति का अर्थ (The Meaning of Foreign Policy)

साधारण शब्दों में विदेश नीति का अर्थ है उन सिद्धान्तों का समूह जो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने संबंधों के दौरान अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए अपनाता है।

जार्ज मोडेलस्की के शब्दों में. "विदेश नीति देशों द्वारा विकसित, दूसरे राष्ट्रों के व्यवहार को बदलने वाले कार्यों की व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में अपने कार्यों का समायोजन है।"

पैडलफोर्ड तथा लिंकन के अनुसार, "विदेश नीति उस प्रक्रिया का मुख्य तत्त्व है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने विशेष लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को ठोस कार्य-दिशा देते हैं तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा बनाए रखने का यत्न करते हैं।" दूसरे शब्दों में, विदेश नीति में उद्देश्यों का निर्माण तथा उनको प्राप्त करने के प्रयत्न करना, आदि बातें शामिल हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विदेश नीति कुछ स्वीकृत सिद्धान्तों का समूह होती है, एक कार्य-योजना होती है तथा दूसरे देशों के साथ संबंधों को स्थापित करने एवं चलाने की एक सोची-समझी योजना होती है जिसके आधार पर राष्ट्रीय हित को परिभाषित तथा मान्यता प्राप्त उद्देश्यों और परिणामों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

राजनय का अर्थ (Meaning of Diplomacy)

राजनय का अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में केन्द्रीय महत्त्व है क्योंकि राष्ट्रों के बीच संबंधों की स्थापना की प्रक्रिया, प्रभावशाली कूटनीतिक संबंधों की स्थापना से ही शुरू होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के लिए जिस पद्धति का सहारा लिया जाता है, उसे ही राजनय की संज्ञा दी जाती है।

फ्रैंकल के अनुसार, "कूटनीति अलग-अलग राजनीतिक इकाइयों-राज्यों, जिनका संपर्क किसी भी स्तर का हो, के सह-अस्तित्व का अनिवार्य परिणाम है।

Pitman B. Potter के शब्दों में, "साधारण भाषा में राजनय से अभिप्राय वे अंग तथा तरीके से हैं जिनसे राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपना राजनीतिक संबंध बनाए रखते हैं।"

राजनय की मुख्य भूमिका शांतिकालीन साधन के रूप में है। यदि शांति युद्ध में परिवर्तित हो जाती है तो इसे राजनय की असफलता माना जाएगा। पामर एवं पर्किन्स के शब्दों में, "विदेश नीति की भाँति राजनय का उद्देश्य संभवतः शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा, लेकिन युद्ध न रोके जा सकने की दिशा में सैनिक गतिविधियों की सहायता द्वारा, राष्ट्रीय सुरक्षा प्राप्त करना है।"

विदेश नीति और राजनय में सम्बन्ध

(Relationship between Foreign Policy and Diplomacy)

विदेश नीति तथा राजनय के अर्थ और उद्देश्यों का ऊपर विस्तार में वर्णन किया गया है। दोनों के अर्थों और उद्देश्यों को समझने के बाद अब दोनों में क्या संबंध है, इसका उल्लेख निम्नलिखित ढंग से किया जाता है-

विदेश नीति और राजनय एक-दूसरे के पूरक-

वर्तमान काल में विदेश नीति और राजनय में घनिष्ठ संबंध है। राजनय के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति राजनय के कंधों पर टिकी होती है और दूसरे राष्ट्रों में लागू होती है। राजनय राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय शक्ति, प्रबंध और विदेश नीति का एक तत्त्व है। यह राष्ट्रीय हित का प्रमुख उपकरण है। राष्ट्रों के मध्य शक्ति

के लिए संघर्ष में राजनय शक्ति-प्रबंध और सामंजस्य द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। राजनय शांतिपूर्ण साधनों द्वारा विदेश नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

बहुत से लेखकों ने राजनय शब्द का प्रयोग विदेश नीति के पर्यायवाची रूप में किया है जबकि दोनों में अंतर है सर विक्टर **विलेगली** के कथानुसार, "राजनय विदेश नीति नहीं है, बस इसे क्रियान्वित करने वाला एक अभिकरण है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि एक के बिना दूसरा कार्य नहीं कर सकता। राजनय का विदेश नीति से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं हैं वरन् ये दोनों मिलकर कार्यपालिका की नीति निर्धारित करते हैं-विदेश नीति द्वारा राजनीति (राजनय) तय की जाती है और राजनय द्वारा तकनीक तय की जाती है।" इस प्रकार जहाँ विदेश नीति वैदेशिक संबंधों की आत्मा है, वहाँ राजनय वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विदेश नीति को संचालित किया जाता है।

पुराने समय में संचार साधन विकसित नहीं थे। इसलिए तब राजनयज्ञों को पूर्ण शक्ति सम्पन्न बनाकर भेजा जाता था। वे स्वयं ही समझीते और संधियां कर लेते थे। परन्तु संचार-साधनों के विकास के कारण अब स्थिति बदल गई है। आज निर्णय लेने की शक्ति अधिकाधिक प्रेषक राज्य की सरकार के पास है तथा कुशल संचार व्यवस्था के कारण विदेश नीति और राजनय का अंतर काफी कम हो गया है। आज राजदूत लगातार अपनी सरकार के समर्थक रखता है और विशेष स्थिति पैदा होने पर अपनी सरकार से सम्पर्क बनाकर उसको परामर्श प्राप्त करता है लेस्टर पीयसर्न के अनुसार, "राजनय इस अर्थ में विदेश नीति है कि आजकल नीति-निर्माता स्वयं ही राजनयिक प्रतिनिधियों का कार्य करते हैं तथा स्वयं अपनी नीतियों को कार्यरूप देते हैं। वर्तमान में विदेश नीति और राजनय समानार्थक हैं।

देश के राजनेताओं द्वारा राज्यों की राजनीति (राजनय) और उनकी विदेश नीति का निर्धारण किया जाता है और विदेश नीति का क्रियान्वयन राजनयिकों तथा अन्य राजनयिक अधिकारियों द्वारा किया जाता है। जब नीति-निर्माता अपने उद्देश्यों का निर्धारण कर लेते हैं तब उन उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रश्न उठता है तो यहीं से राजनय का प्रभाव दिखाई देने लगता है। कुशल राजनय पर ही विदेश नीति के क्षेत्र में राज्य की सक्रियता निर्भर करती है। प्रायः राज्य चार विकल्पों के आधार पर कार्य करता है। ये विकल्प हैं-राजनय, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और सैनिक। इन विकल्पों में से राजनय को प्रायः प्रधानता दी जाती है। वैसे समय तथा परिस्थिति के अनुसार राज्य के द्वारा इन विकल्पों में से किसी को भी अपनाया जा सकता है। राज्यों द्वारा राजनय के मार्ग को ही प्रायः अपनाया जाता है। राजनय के माध्यम से विदेश नीति के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। वास्तव में एक देश की कुशल विदेश नीति उस देश के कुशल राजनय का परिणाम होती है। विदेश नीति वैदेशिक संबंधों की आत्मा है और राजनय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विदेश नीति को संचालित किया जाता है। राजनयज्ञों द्वारा अपनी सरकारों की विदेश नीति के सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए जाते हैं, किन्तु वे अपने प्रतिवेदनों द्वारा इस नीति की रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। विदेश नीति तय करते समय राजनयज्ञों के प्रतिवेदनों का हमेशा ही मूल्यवान कच्चा माल समझता है। पामर तथा परकिन्स के अनुसार, "राजनय वे सेवीवर्ग और यंत्र प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा विदेश नीति को क्रियान्वित किया जाता है। इनमें से एक मूल तत्त्व है और दूसरा प्रणाली है।"

विदेश नीति और राजनय में चोली दामन का साथ है और वे एक-दूसरे के पूरक हैं। राज्य और विदेश नीति को एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत करते हुए डॉ. एम. पी. राय ने लिखा है कि, "राजनय स्वयं में विदेश-नीति नहीं है। वास्तव में राजनय किसी भी देश की विदेश नीति को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया तथा विदेश-नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है। इनके मध्य भेद करने वाली विभाजक रेखा खींचना अति कठिन है। दोर्ना एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि ये एक-दूसरे की सहायता के बगैर चल नहीं सकते। राजनय विदेश नीति का वह साधन है जिसकी सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रक्रिया चलती रहती है। वस्तुतः विदेश नीति और राजनय एक ही सिके के दो पहलू हैं।"

सर विक्टर बैलेगी भी विदेश नीति और राजनय को एक-दूसरे का पूरक मानते हैं। उनके अनुसार, "राजनय और विदेश नीति एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि एक के सहयोग के बिना दूसरे का कार्य नहीं चल सकता। राजनय का विदेश-नीति से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं। ये दोनों मिलकर एक प्रशासनिक नीति का निर्माण करते हैं। नीति ब्यूह-रचना को निर्धारित करती है तथा राजनय चतुरता को।"

(पैडलफोर्ड और लिंकन के अनुसार, "राजनय और विदेश नीति अन्योन्याश्रित हैं। इन दोनों के बीच स्पष्ट विभेद करना उतना ही असंभव है जितना नीति और कर्तव्य में।"

मार्गेन्थो का भी ऐसा ही मत है क्योंकि आज राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, विदेश मंत्री आदि व्यापक रूप से राजनय का उपयोग कर रहे हैं। इस प्रकार राजनय तथा विदेश नीति और राजदूत तथा विदेश मंत्रियों के बीच भेद कम होता जा रहा है। मार्गेन्थो के अनुसार, "विदेश मंत्रालय के साथ राजनयज्ञ अपने देश की विदेश-नीति को निर्धारित करता है। जिस प्रकार विदेश मंत्रालय विदेश-नीति का तान्त्रिका केन्द्र है, उसी प्रकार राजनयिक प्रतिनिधि उसके दूरस्य सूत्र हैं, जो केन्द्र और बाह्य जगत् में दोनों ओर से यातायात बनाए रखते हैं।"

सैटो विदेश नीति और राजनय में भेद न मानते हुए कहता है कि, "डिप्लोमेटिस्ट शब्द के अन्तर्गत सभी लोक सेवा अधिकारी आते हैं चाहे वे विदेश विभाग के गृहक्षेत्र में कार्य करने वाले हों अथवा विदेश दूतावासों में।" सैटो विदेशमंत्री तक को कूटनीति का एक भाग मानता है क्योंकि उसे भी विदेश मंत्रियों, राजदूतों और प्रतिनिधियों आदि से अनेक बार वार्ता और समझौते आदि करने पड़ते हैं और जरूरत के अनुसार शिखर वार्ताओं और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेना पड़ता है। डॉ. हेनरी किसिंगर यद्यपि अमेरिका के विदेश सचिव थे, परन्तु फिर भी उन्होंने एक सफल राजदूत की भूमिका निभाई थी। हॉलैण्ड एक ऐसा देश है जहाँ विदेशी विभाग के किसी सदस्य या राजदूत को ही विदेश मंत्री बना दिया जाता है जो बाद में अपने कार्यकाल की समाप्ति पर वापस विदेश सेवा में भेज दिया जाता है।

विदेश नीति और राजनय में अन्तर-

यद्यपि विदेश नीति और राजनय एक-दूसरे के पूरक हैं, तथापि इनमें अन्तर अथवा भेद भी है।

पामर तथा परकिन्स के अनुसार, "राजनय वह सेवी वर्ग और यन्त्र प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा विदेश नीति को क्रियान्वित किया जाता है। इनमें एक मूल तत्त्व है और दूसरा प्रणाली है।" विदेश नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं के एक सामान्य धारणा पर निर्भर है। दूसरी ओर राजनय एक लक्ष्य नहीं बल्कि साधन है, उद्देश्य नहीं बल्कि एक तरीका है।

राजनय एक ऐसा अधिकरण है जिसके माध्यम से विदेश नीति युद्ध के अतिरिक्त अन्य साधनों से अपना लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करती है जब समझौता करना असंभव बन जाता है तो राजनय निष्क्रिय बन जाता है और विदेश नीति कार्यरत रहती है।

विदेश नीति और राजनय को समानार्थी रूप में समझना गलत है। विदेश नीति और राजनय में आधारभूत अंतर है। जहाँ विदेश नीति साध्य है, राजनय उसका साधन है। सर विक्टर वेलेजली के अनुसार, "राजनय विदेश नीति नहीं है, बरनू इसके क्रियान्वित करने वाला एक अभिकरण है।" जे.आर. चाइल्डस के शब्दों में, "विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का मूल तत्त्व है, जबकि राजनय ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा नीति को संचालित किया जाता है।"

हैराल्ड ने विदेश नीति और राजनय में अंतर माना है। उसके अनुसार, "राजनय और विदेश नीति दोनों राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हितों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। विदेश नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं की सामान्य धारणा पर आधारित होती है जबकि राजनय कोई लक्ष्य न होकर एक साधन है। यह उद्देश्य नहीं वरन् एक तरीका है। राजनय बुद्धि, समझौता और हितों के विनिमय द्वारा सम्प्रभु राज्यों के बीच प्रमुख संघषों पर रोक लगाता है। यह ऐसा अभिकरण है जिसके माध्यम से विदेश -नीति युद्ध की अपेक्षा समझौते द्वारा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करती है।" इस प्रकार हैरल्ड निकलसन ने राजनय को केवल एक शांति का उपाय माना है। यदि यह असफल होता है तो युद्ध छिड़ जाता है।

विदेश नीति की भाँति राजनय का भी उद्देश्य जहाँ तक संभव हो सके शांतिपूर्ण साधनों के द्वारा देश की रक्षा करना है। लेकिन यदि असफल हो जाए तो राजनय सैनिक कार्यवाही को हर प्रकार की सहायता देकर देश की सुरक्षा में यथासंभव योगदान देना है।

विदेश नीति और राजनय में अन्तर को स्वीकार करते हुए नार्मन हिल का कहना है कि विदेश नीति प्रकृति से ही सत्ता सूचक है जबकि राजनय मुख्यतः क्रिया-विधि है। जहाँ विदेश नीति विदेशों के साथ संबंधों का सार है वहीं राजनय वह प्रक्रिया है जिसके

द्वारा विदेश नीति क्रियान्वित की जाती है। विदेश नीति सार है और राजनय उसकी प्रक्रिया है। सर विक्टर वेलेजली ने दोनों के बीच अंतर को स्वीकार करते हुए कहा है कि, "राजनय नीति नहीं है, बल्कि यह इस नीति को क्रियान्वित करने का साघन है।" लेस्टर पियरसन के मतानुसार, "राजनय नीति निर्माण नहीं करती, यह तो उसका संप्रेषण तथा व्याख्या करती है।"

हंस जे. मार्गेन्थो ने विदेश नीति और राजनय के बीच अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि," विदेश मंत्रालय नीति-निर्माण करने वाला अभिकरण है। यह विदेश नीति का मस्तिष्क है, जहाँ विदेश-नीति निर्धारित होती है तथया उन आवेगों का निस्सरण होता है, जिनका राजनयिक प्रतिनिधि वास्तविक विदेश-नीति में रूपांतर करते हैं। जबकि विदेश मंत्रालय विदेश का मस्तिष्क है, राजनयिक प्रतिनिधि इसकी आँखें, कान, मुख, उँगलियाँ तथा एक प्रकार से इसके भ्रमणशील अवतार हैं।" मार्गेन्थो का यह भी कहना है कि, "राजनयिक प्रतिनिधि केवल आँख और कान ही नहीं हैं, जो विदेश-नीति के तंत्रिका केन्द्र को, इसके निर्णयों का उपादन के लिए बाह्य संसार की घटनाओं की सूचना देते हैं। राजनयिक प्रतिनिधि मुख और हाथ भी हैं जिनके द्वारा तंत्रिका केन्द्र से उत्पन्न आवेगों का शब्दों और कार्यों में रूपांतरण होता है।" निकल्सन ने भी राजनय और विदेश नीति में भेद को स्वीकार किया है और कहा है कि यदि कोई राजनयिक यह समझता है कि वह विदेश नीति को प्रभावित कर सकता है, तो वह भूल करता है। अमेरिका के राष्ट्रपति के विशेष सचिव मैकजॉर्ज बन्डी (1961-66) ने एक बार कहा था, "यह प्रदर्शित करना कि विदेश सेवा में भर्ती होकर विदेश संबंधों को प्रभावित किया जा सकता है, गलत है।"

विदेश नीति और राजनय में भेद होते हुए भी दोनों का आपस में घनिष्ट संबंध है। वैस्टर का कहना है कि राजनय युद्ध-कौशल है तो विदेश नीति व्यूह-रचना है। युद्ध कौशल के अभाव में व्यूह रचना का कोई महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार राजनय के अभाव में विदेश नीति व्यर्थ है। एक सफल और योग्य राजनय के अभाव में उत्तम तथा उचित विदेश नीति भी असफल सिद्ध होती है। विदेश नीति की सफलता राजनय के उत्तम प्रयोग पर निर्भर करती है। अंत में हम कहेंगे कि यदि किसी राज्य को वैदेशिक संबंधों में सफलता प्राप्त करनी है तो बुद्धिमत्तापूर्ण निर्धारित विदेश नीति और योग्य तथा कुशल राजनय का सम्मिश्रण जरूरी है।

5. राजनयिक व्यवहार का विकास [EVOLUTION OF DIPLOMATIC PRACTICE]

1. राजनयिक व्यवहार के विकास का विस्तार से वर्णन करें। (Write in detail the Evolution of Diplomatic Practice.)

उत्तर— राजनय एक कला है जिसे अपनाकर विश्व के विभिन्न राज्य अपने पारस्परिक संबंधों में वृद्धि करके अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करते हैं। **दूसरे शब्दों** में, राजनय राज्यों के मध्य संबंधों को बनाए रखने का एक तरीका है। इसी के माध्यम से राज्य अपने आपसी सरकारी कार्यों की पूर्ति तथा शांतिपूर्ण साधनों का उपयोग करके अपने मतभेदों को दूर कर सकते हैं। राजनय एक कला है। **के. एम. पन्निकर** के अनुसार, "राजनय में साधन और तरीकों का महत्त्व है।" यदि राजनय के साधन और लक्ष्यों के बीच असंगति हो तो देश कमजोर होता है और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा गिर जाती है। इस दृष्टि से प्रत्येक राज्य को ऐसे साधन अपनाने चाहिए जो दूसरे राज्यों में उसके प्रति विश्वास और सद्भावना पैदा कर सके।

राजनय का जन्म कब हुआ और कैसे हुआ, यह एक जटिल प्रश्न है। यह माना जाता है कि राजनय कम-से-कम दो राज्यों के मध्य संबंधों में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार इसका संबंध राज्यों के जन्म के साथ जुड़ा है।

के. एम. पानिक्कर ने इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है कि, "जब से संगठित राज्य का अस्तित्व है तभी से राजनय तथा राजनयिकों का अस्तित्व रहा होगा, क्योंकि राज्य एक-दूसरे से संबंध रखे बिना नहीं रह सकते हैं।" राजनय उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का इतिहास। राजनयक सिद्धान्तों के विकास में हर युग ने अपने ही तरीकों से अपना योगदान दिया है। आधुनिक राजनयिक व्यवस्था का आरंभ यूरोपीय राज्य व्यवस्था के प्रारंभ से ही माना जाता है। पश्चिम विद्वान् राजनय के इतिहास को 500 वर्ष पुराना मानते हैं इसकी उत्पत्ति इटली में 1500 ई. में मानी जाती है। इटली से ही राजनय का प्रचलन अन्य राज्यों में फैला।

भारत विश्व का सबसे प्राचीन देश है। इसकी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति में भी राजनय अथवा कूटनीति का उल्लेख आया है। अनेक ग्रंथ जैसे-मनुस्मृति, शुक्र स्मृति, नारद स्मृति आदि इस विषय में बहुत प्रसिद्ध हैं। भारत के धार्मिक ग्रंथों में राजनय के **चार साधन** बताए गए हैं-साम, दाम, दण्ड और भेद। यूरोप में राजनय का प्रारंभ यूनान के नगर राज्यों द्वारा हुआ माना जाता है। रोमन राज्यों में दूतों का उल्लेख आया है। यूनान के सिकंदर के समय भारत का संबंध यूरोप से हुआ। उस समय चाणक्य की कूटनीति अथवा राजनय के सिद्धान्तों पर भारत का एक शक्तिशाली तथा समृद्धिशाली देश के रूप में उल्लेख स्वयं यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने किया है। रोमन राज्यों का भले ही राजनय के सिद्धान्तों के विकास में कोई अनुदान न रहा हो पर अन्तर्राष्ट्रीय कानून में उनकी देन को बहुत महत्त्व दिया जाता है। राजनय सिद्धान्तों का विकास समय के साथ होता रहा। राजनय के विकास का इतिहास बहुत पुराना है पर राजनय का सुसंगठित रूप में विकास आधुनिक काल में हुआ है। 15वीं शताब्दी में इटली में राजदूतों की नियुक्ति का सिद्धान्त अपनाया गया था। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी तो राजनय के विकास का सर्वोच्च काल माना जाता है।

वास्तव में राजनयिक कला के सिद्धान्तों का विकास विभिन्न चरणों से गुजरा है। राजनयक साधनों और तरीकों का विकास राज्यों के आपसी संबंधों के लम्बे इतिहास से जुड़ा हुआ है। इन पर देश-काल की परिस्थितियों ने भी प्रभाव डाला है और राजनयिक व्यवहार भी तदनुसार बदलता रहा है। विश्व के विभिन्न देशों के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनयिक आचार का तरीका अथवा सिद्धान्त प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न रहा है। यहाँ हम यूनान, इटली, फ्रांस तथा भारत में अपनाए गये राजनयिक आचार के डंगों का अध्ययन करेंगे।

यूनान का राजनय

(Diplomacy of Greece)

यूरोप में यूनान की सभ्यता एवं संस्कृति अति प्राचीन है। राजनयिक सिद्धान्त के विकास में उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में राजनय का विकास यूनानी नगर राज्यों से प्रारंभ होता है। इन राज्यों के मध्य राजनयिक समागम (Diplomatic Intercourse) की व्यापक पद्धति थी। ईसा से 600 वर्ष पूर्व इन राज्यों में परस्पर संधिवार्ता के लिए अग्रदूत (Herald) के जाने की प्रथा थी। इन अग्रदूतों का कार्य न केवल संधि-वार्ता ही करना या बल्कि ये राजकीय गृहस्थी के संचालन, सभाओं और परिषदों में व्यवस्था की स्थापना और धार्मिक अनुष्ठानों के संपादन आदि का कार्य भी करते थे। यूनानी सभ्यता के विकास के साथ-साथ नगर राज्यों के संबंध जटिल तथा स्पर्द्धापूर्ण बन गए। उस समय संधि वार्ता के लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता महसूस की गई जो प्रभावशाली वक्ता, तीव्र स्मरण शक्ति और बुलंद आवाज वाले हों। दूसरे शब्दों में इन अग्रदूतों को न केवल उद्घोषणा करने वाला माना जाता था बल्कि उनको वक्ता, ओजस्वी, तीव्र स्मरण शक्ति तथा ऊँची आवाज में बोलने का गुण रखने वाला भी माना जाता था। प्रत्येक राज्य उपर्युक्त गुण रखने वाले व्यक्ति अपना राजदूत बनाकर राजकीय सम्मेलनों में भेजते थे। यह राजदूत अपने राज्य पर लगाये गये आरोपों का खंडन बड़ी चतुराई से करते थे। "राजदूतों को जब विदेशों में भेजा जाता या तो उनसे यह आशा नहीं की जाती थी कि वे सूचना एकत्रित करें बल्कि वह आशा की जाती थी कि वह ओजस्वी भाषण द्वारा विदेशी जनता को प्रभावित करें।" प्रत्येक राजदूत से यह आशा की जाती थी कि वह अपने स्वामी के संदेश मौखिक रूप से राजा के समक्ष प्रस्तुत करने की क्षमता रखता हो। यूनान में नगर राज्यों के उदय के परिणामस्वरूप अनेक पारस्परिक तथा वैदेशिक संबंध अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के संबंधी समस्याएं उत्पन्न हुईं जिनके समाधान के लिए संदेश वाहकों और योग्य वार्ताकारों की आवश्यकता महसूस की गई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए राजनय का जन्म हुआ।

राजनय सिद्धान्त के विकास में यूनान का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आज अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बड़े प्रचलित हैं। उनका प्रारंभ भी यूनान में ही हुआ है। नगर राज्यों के पारस्परिक संबंध इन्हीं सम्मेलनों द्वारा स्थापित करते थे। वहीं पर अंतर्जातीय समस्याओं का निदान खोजा जाता था। उस काल में इन सम्मेलनों को एम्फिकटनायिक (Amphictyanic) अर्थात् क्षेत्रीय सम्मेलन या परिषद् (Council) कहते थे।

इन सम्मेलनों में राज्यों में सहयोग तथा घनिष्टता बढ़ती थी। इस घनिष्टता के दो कारण थे—

1. यूनानी अपने को सभ्य समझते थे और अन्य देश वालों को असभ्य कहते थे। वास्तव में उस काल में यूनानी अथवा हेलेनिक

भाषा, संस्कृति तथा शिक्षा में बहुत बढ़े-चढ़े थे।

2. दूसरा कारण था व्यापारिक संबंध। ये राज्य निकट-निकट बसे थे और व्यापार इनमें खूब होता था। यूनानी राज्यीय सम्मेलन का एक सचिवालय होता था। इस सचिवालय का काम था दान से चलने वाली संस्थाओं एवं धार्मिक स्थानों की सुरक्षा की व्यवस्था करना तथा यात्रियों आवागमन की सुविधाओं की देखभाल करना। इन कार्यों के अतिरिक्त हेलेनिक राज्यों की राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार करना था। इन सम्मेलनों के महत्त्व का उल्लेख श्री निकलसन ने अपनी पुस्तक में करते हुए कहा कि, "यद्यपि इन सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य या मंदिरों तथा खज़ानों तथा यात्रियों के आवागमन की सुरक्षा करना, फिर भी ये सामान्य हेलेनिक हितों की जो राजनैतिक पहलू रखते थे व्यवस्था करता था जैसे महत्त्वपूर्ण राजनयिक कार्य एवं राजनयिक नई पद्धति का आविष्कार करना।"

आगे चलकर ये परिषद् सफल न हो सकी पर उन्होंने भविष्य में आने वाली संतानों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि का दरवाजा खोल दिया। यूनानी नगर राज्यों के आपसी संबंधों ने अनेक रीति-रिवाजों और सिद्धान्तों को जन्म दिया। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय कानून अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। यूनानी नगर-राज्यों ने आपसी संबंधों का विकास अपनी आंतरिक नीति, सुविधा तथा सुरक्षा संबंधी रणनीति को ध्यान में रखकर किया था। वर्तमान युग की अन्तर्राष्ट्रीय संधियों के बीज तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक संघों में देखे जा सकते हैं। नगर-राज्यों की : लोकसभाओं में विदेशों से अपने राज्य के राजदूतों द्वारा भेजे गए प्रतिवेदना पर आलोचनात्मक विचार किया जाता था। राजदूतों द्वारा प्रस्तुत समस्याओं पर विचार करने के पश्चात् आवश्यक निर्देश दिये जाते थे। यदि राज्यों के बीच कोई विवाद उत्पन्न हो जाता था तो उसे पंच-निर्णय द्वारा सुलझाया जाता था। यूनानियों ने अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने के लिए दो तरीके अपनाये एक तो वे शक्ति के आधार पर शांति स्थापित करते थे तथा दूसरे ये न्यायाधिकरण द्वारा झगड़ों को सुलझाने के लिए शांति-संधियां करते थे।

यूनानी राजनयज्ञ के कार्य (Functions of Greek Diplomats)- यूनानी राजनयज्ञ निम्नलिखित कार्य करते थे

1. स्वागतकर्ता राज्य से सूचनायें एकत्रित करना;

2. लोकप्रिय नगर-सभाओं के सामने अपने राज्य के हितों के समर्थ में सभी ढंग अपनाना;

3. विदेशी-राज्य के संबंध में सामयिक प्रतिवेदन तैयार करना;

4. विदेशी राज्य में अपने राज्य के नागरिकों के हितों को सुरक्षित रखना;

5. विवादों का शांतिपूर्वक हल करने के लिए संधिवार्ता करना;

6. विवादों को शांतिपूर्वक हल करने के लिए सम्मेलनात्मक राजनय के तरीके अपनाना; यूनान के नगर-राज्यों द्वारा राजनयिकों को अनेक उन्मुक्तियाँ और विशेषाधिकार दिये जाते थे। प्रारंभ से ही वैदेशिक संबंधों की रचना में इन राजनयिकों का योगदान महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक था।

यूनानी राजनय की विशेषताएं (Characteristics of Greek Diplomacy)-यूनानी नगर-राज्यों के राजनयिक व्यवहार की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

1. यूनानी युग राजनयिक संधि-वार्ताओं का पूरा प्रचार किया जाता था।

2. संधियां खुले की जाती थीं। गुप्त संधियों को उचित नहीं समझा जाता था।

3. यूनानी नगर-राज्य पंच फैसलों से पूर्ण रूप से परिचित थे। वे विवादों का समाधान पंच-फैसलों की प्रक्रिया से करते थे।

4. राजदूतों का आदान-प्रदान यूनानी नगर व्यवस्था में अपने चरम बिन्दु पर था। यूनानी नगर राज्यों द्वारा विकसित सर्वाधिक उपयोगी संस्था वाणिज्य दूतों की थी। ये वाणिज्य दूत उसी नगर के मूल निवासी होते थे जहाँ इनको रखा जाता था। उनका

काम अपने राज्य में नियुक्तिकर्ता राज्य के हितों की देखभाल करना था।

5. पाँचवी शताब्दी तक यूनानियों ने युद्ध की घोषणा, शांति स्थापना, संधियों का अनुसमर्थन, पंच-फैसला, तटस्थता, राजदूतों का आदान-प्रदान, वाणिज्य दूतों के कार्य, युद्ध के कुछ नियम आदि से संबंधित सामान्य सिद्धान्तों का विकास किया।

6. यूनानियों ने विदेशियों की स्थिति, नागरिकता, शरणदान, प्रत्यर्पण तथा समुद्र-व्यापार आदि विषयों के बारे में सिद्धान्तों का निर्माण किया था।

स्पष्ट है कि यूनानियों ने राजनयिक आचार के क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली थी तथा उन्होंने राजनय के विकास में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी भूमिका अदा की थी।

यूनानी राजनय के दोष (Defects of Greek Diplomacy)— यूनानियों की राजनयिक संबंधों की विभिन्न उल्लेखनीय धारणा के होते हुए भी उनके राजनयक आचार में निम्नलिखित त्रुटियां थीं:

1. यूनानी स्वभाव से ईर्ष्यालु और अव्यावहारिक थे। वे परस्पर इतने ईर्ष्यालु थे कि इससे उनकी आत्म-रक्षा की आवश्यकता को भी हानि पहुंचती थी।

2. वे अत्यधिक संदेहशील थे जिसके कारण कोई संधि-वार्ता सफल नहीं हो पाती थी।

3. यूनानी लोग स्वभाव से अच्छे राजनायिक नहीं थे।

4. यूनानी व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के दायित्वों का सही वितरण न होने के कारण राजनयिक के कार्यों में अनेक कठिनाइयां तथा भ्रम पैदा हो जाते थे।

5. आवागमन के विकसित न होने के कारण निर्देशों को प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लग जाता था जिसके परिणामस्वरूप निर्देश बेकार हो जाते थे।

6. यूनानी नगर-राज्यों में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के दायित्वों का सही वितरण न होने के कारण राजनयिक कार्यों में अनेक कठिनाइयां पैदा हो जाती थी।

7. यूनानी इस बात की खोज करने में असमर्थ रहे कि लोकतंत्रात्मक राजनय को स्वेच्छाचारी राजनय की भाँति कैसे कार्य कुशल बनाया जा सकता है।

8. यूनानी राजदूत सर्वशक्ति संपन्न नहीं होते थे, इसलिए छोटे-छोटे फैसलों में भी देरी हो जाती थी।

9. लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के कारण उनके द्वारा लिए गये निर्णय न तो गुप्त रहते थे और न ही शीघ्र लिए जाते थे।

10. यूनानी युग की जनसभाएँ अनुत्तरदायी थीं। उनके निर्देश के अनुसार कार्य करने वाले राजदूतों के फैसलों को भी रद्द कर दिया जाता था।

रोम का राजनय (Diplomacy of Rome)

यूनानी नगर राज्यों के पतन पर रोमन साम्राज्य का उदय हुआ। यूनानी राजनयिक आचार की मान्यताएँ रोमन लोगों को प्राप्त हो गई पर उनमें किसी प्रकार का विकास रोमन लोगों द्वारा न किया गया। यूनानियों ने संधि-वार्ता पद्धति को विकसित किया था और राजनयिक प्रक्रिया के माध्यम से संपर्क स्थापित करने में विश्वास व्यक्त किया था लेकिन रोमन लोगों ने सैनिक शक्ति पर अधिक विश्वास किया। ये राजनयिक के स्थान पर विजेता अधिक थे। रोमन लोगों ने राजनयिक ढंग के स्थान पर 'सीधी कार्यवाही' पर अधिक विश्वास किया।

रोमन लोग शत्रु को मित्र बनाने की कला से अनभिज्ञ थे। वे तो शत्रु को कुचलना जानते थे। निकलसन के मतानुसार, "वे क्रूर एवं बर्बर थे और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नृशंस उपाय अपनाते थे। अच्छाई उनमें यह थी कि वे ऐसे सिद्धांत अपनाते जिससे अपने पक्के शत्रुओं को कुचलने तथा अधीनता मानने वालों को क्षमादान देते थे।"

रोम का योगदान अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र में था। रोम का एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिवर्तन होने के कारण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों और धर्मों को मानने वाले लोग उसके शासन के अधीन आ गये, अतः कई प्रकार के कानूनों का विकास हुआ।

पहले प्रकार के कानून **नागरिक कानून (Jus Civile)** के नाम से जाने गये। किसी समुदाय विशेष (रोमन समुदाय) के जीवन का अनुशासित करने वाले कानून को नागरिक कानून की संज्ञा दी जाती है। दूसरे प्रकार के कानून को समस्त राष्ट्रों में समान रूप में प्रयुक्त होते हैं, यह **राष्ट्रों के कानून (Jus Gentium)** के नाम से जाने गये। ये न केवल विश्वव्यापी कानून होते हैं, जिनका व्यवहार समस्त राष्ट्रों में होता है बल्कि ये मानव के नैसर्गिक विवेकजन्य भी होते हैं, जिनका व्यवहार समस्त राष्ट्रों में होता है बल्कि ये मानव के नैसर्गिक विवेकजन्य भी होते हैं। जुस सिविली और जुस जेन्टियम में ये अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध **रोमन विधिशास्त्री गोयस** का कथन है कि, "किसी जनता ने अपने लिए जो कानून निश्चित किया है और वह केवल उसी तक सीमित है तो उसे 'जुस सिविली या उस राज्य विशेष का कानून कहेंगे।"

दूसरी ओर जिसे प्राकृतिक बुद्धि ने सब मनुष्यों में प्रतिष्ठित किया है, जिसका पालन समान रूप से सब देशों की जनताओं के द्वारा होता है तो उस कानून को '**जस जेण्टियम'** कहते हैं क्योंकि यह सब जातियों द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला कानून है। कानून का तीसरा और सबसे प्रमुख प्रकार प्राकृतिक कानून (Jus Naturalae) है। इस कानून का विकास भी धीरे-धीरे हुआ है। जैसे-जैसे साम्राज्य विशालतर होता गया, त्यों-त्यों कानूनी विवाद भी बढ़ते गये और सम्राट के पास सभी प्रदेशों से जटिल कानूनी प्रश्नों के निर्णयों के लिए अपीलें आने लगीं। सम्राट ऐसे मामलों में कानूनी विशेषज्ञों से सलाह लेता था जिनसे यह आशा की जाती थी कि वे ऐसे सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रतिपादन करें जिन्हें संपूर्ण साम्राज्य पर लागू किया जा सके। अतः विधिशास्त्रियों ने कानून, अधिकार तथा न्याय की सूक्ष्म मीमांसा करना आरंभ किया जिसने एक तरफ तो रोमन विधिशास्त्र को परिपक्वता प्रदान की और दूसरी और सब देशों और जातियों में तथा संपूर्ण प्रकृति में पाये जाने वाले सामान्य तत्त्वों के आधार पर प्राकृतिक कानून की कल्पना को जन्म दिया। प्राकृति कानून के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उल्पियन ने लिखा है कि यह प्रकृति द्वारा सब प्राणियों को दी जाने वाली शिक्षा है, यह कानून मनुष्यों पर ही नहीं बल्कि पृथ्वी, आकाश और समुद्र में पाये जाने वाले सभी प्राणियों पर भी समान रूप से लागू होता है। इन कानूनों को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो वे अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र में आते हैं।

रोमन लोग युद्ध तथा शांति दोनों ही कार्यों में राजनीतिज्ञों का स्वागत करते थे। रोमन सीनेट विदेशों में अपने देश के राजदूत भेजती थी। रोमन कानून राजदूतों की अनतिक्रमयता (Inviolability) को स्वीकार करता था। सिसरो के अनुसार, "राजदूतों की अनतिक्रमयता दैवीय तथा मानवीय दोनों ही कानूनों से है। वे पवित्र और आदरणीय हैं ताकि वे अनतिक्रम्य बने रहें। यह केवल मित्र राष्ट्र में ही नहीं है अपितु शत्रु की सेना में घिरे होने पर भी है।" राजदूत जब किसी तीसरे राज्य में से गुजरता तो भी उसे अनतिक्रम्य का विशेषाधिकार प्राप्त था। राजदूत पर किया गया कोई भी हमला रोमन अन्त्रजातीय कानून (Jus Gentium) का उल्लंघन माना जाता था। रोमन वासी अपने वचन के पक्के थे। "एक रोमनवासी ने कार्थेजियन लोगों से जो प्रतिज्ञा की थी, उसको निभाने में अपनी जान खो दी थी।" निकलसन का मत है कि "रोमनवासियों को यह शिक्षा मिली था कि संधियों की व्याख्या केवल शब्दों पर न करके, बुद्धि तथा न्याय के आधार पर की जानी चाहिए।" रोमन पद्धति के आधार पर प्रशिक्षित राजदूतों का जन्म हुआ जो राजनयिक कार्यविधि के विशेषज्ञ माने जाते थे। रोमन लोगों ने राजनय के क्षेत्र में एक प्रशिक्षित 'पुरालेखापाल' की पदवी प्रदान की। पुरालेखापाल राजनयिक दृष्टांतों और प्रक्रियाओं में प्रवीण व्यक्ति होते थे। आज भी राजनय की एक महत्त्वपूर्ण शाखा पुराने लेखों, संधियों, अभिलेखों आदि की रक्षा करना और उन्हें व्यवस्थित रखना है। रोमन लोगों ने पुरालेखागारों या लेखों से संबंधित कार्यों को 'राजनयिक व्यवहार' की संज्ञा दी है।

रोमन लोगों का अनुदान राजनयिक सिद्धान्त के विकास में इतना ही है कि उन्होंने कानून का मार्गदर्शन किया। निकलसन के अनुसार उन लोगों ने छल प्रपंच के स्थान पर आज्ञा पालन तथा संगठन पर जोर दिया तथा अशान्ति के स्थान पर शांति को महत्त्व दिया।

निकलसन रोमन सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहता है कि, "रोमन साम्राज्य ने सैनिक बल के आधार पर व्यवस्था, अनुशासन, आज्ञापालन, संगठन तथा शांति की जो मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया उससे राजनयिक सिद्धांत का कोई लाभ प्राप्त न हुआ।" रोमन लोगों ने राज्यों की समानता के सिद्धान्त का कभी सम्मान नहीं किया। इसका मुख्य कारण यह था कि रोमन लोगों का अपनी 'सर्वश्रेष्ठता' में विश्वास था।

रोमन राजनय पर डॉ.एस.पी. दुबे के विचार- डॉ. सुखदेव प्रसाद दुबे ने प्राचीन रोमन राजनयिक के बारे में लिखा है। रोमन विजयों ने जिस विश्व राज्य का निर्माण किया, उसमें पारर्थियन हिन्दू और चीनी सभ्यताएँ ही ऐसी थीं जो उसकी सीमा परिधि के बाहर थीं। अतः हम राजनीतिक वातावरण में रोम को किसी विशेष कूटनीति विधान की आवश्यकता नहीं थी। उसका काम केवल अपनी राज्य सीमा को बर्बर्वर आक्रमणों से सुरक्षित रखना था, फिर भी रोमन साम्राज्य के वैदेशिक मामले काफी दिलचस्प थे। प्राचीन काल से ही रोम के युद्ध और शांति की परिस्थितियों पर जो भी कूटनीतिक वार्ता आवश्यक होती थी, वह एक विशिष्ट कूटनीति संस्था (Collegiuma Fetialium) अर्थात् कॉलेज ऑफ फैटियल्म को सौंपी जाती थी। रोमन घोषणा के अनुसार सभी युद्ध उचित थे यदि वे औपचारिक रीति से तब घोषित किए गए जब सभी शांतिपूर्ण प्रयास विफल हो चले थे। युद्ध के पूर्व फेटियल्स कॉलेज का मुखिया, जिसे पेटरम कहते थे सीनेट को सूचित करता था कि उसका शांतिपूर्ण हल निकालने की सारी कूटनीतिक वार्ता निष्फल सिद्ध हो गई। युद्ध प्रारंभ करने के निर्णय के उपरांत वह एक खूनी भाला शत्रु के स्थल पर फेंकता था। यह अनुष्ठान जूपीटर आदि देवताओं के आह्वान के साथ लेकर किया जाता था। जब रोम के विस्तार के साथ ही फिटीयल्स का प्रतिनिधित्व राजदूत करने लगे तो भाला फेंकने की औपचारिक प्रणाली ने एक प्रतीकात्मक स्वरूप ले लिया और शत्रु के स्थल के स्थान पर भाला मीर्टियर्स प्राण अथवा बेलूना के मंदिर के सामने फेंका जाने लगा। फिटीयल्स का संधि-स्थापना का भी कार्य दिया जाता था। विदेशी राजदूतों का सीनेट से फरवरी के महीने में कैपिटल के निकट ग्रेकास्टियेसस के अवसर पर प्रत्यक्ष वार्ता करने का भी अवसर मिलता था। साम्राज्यवादी युग आने के साथ यह कार्य सम्राट ने स्वयं अपने हाथों में ले लिया। रोम द्वारा की गई सभी संघियां असमान थीं क्योंकि वे विजित प्रदेशों के शासकों पर सदैव के लिए थोप दी जाती थीं। रोम का वह विधान जिसके अन्तर्गत उन कानूनी सिद्धान्तों का विकास हुआ था जो रोमन नागरिकों की विदेशी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाए गये थे सही अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय विधान नहीं था। यद्यपि यह उन संबंधों का भी मार्गदर्शन करता था जो रोमन साम्राज्य अपने पड़ोसियों से स्थापित करता था।"

बाई जैण्टाइन साम्राज्य- रोमन साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर रोमनों ने रोम के स्थान पर कुस्तुन्तुनिया को राजधानी बनाकर एक साम्राज्य बनाया। यह साम्राज्य वाई जैण्टाइन साम्राज्य कहलाया। यह साम्राज्य जंगली एवं लड़ाकू जातियों से घिरा था परंतु वहाँ के सम्राटों ने ऐसी नीति अपनाई जिससे वे अपने साम्राज्य की रक्षा करने में समर्थ हुए। ये उपाय तीन प्रकार के थे-

(i) बर्बर जातियों के अंदर फूट डालना जिससे वे संगठित होकर आक्रमण करने में समर्थ न हो सकें।

(ii) सीमा पर बसने वाली जातियों को प्रलोभन देकर उनको अपने वश में करना जिससे जब साम्राज्य पर आक्रमण हो तो वे जातियां शत्रुओं का साथ न दें।

(iii) गैर ईसाई जातियों को ईसाई बनाना जिससे वे शत्रु जातियों से मिलकर उन पर आक्रमण न कर सकें।

इन उपायों से वाई जैण्टाइन सम्राटों ने सूडान, अरब तथा एनासियनों को अपने पक्ष में किया तथा काले सागर एवं काकेशियन की जनजातियों को नियंत्रित किया। इन उपायों का सहारा लेकर मगायर तथा रूसियों का सफल सामना किया। अपनी सैनिक दुर्बलता रहते हुए भी वाई जैण्टायन ने अन्य आक्रमणकारी जातियों की दुर्बलताओं से लाभ उठाया। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने ऐसे राजदूतों को विदेशों में भेजा जो अपने साम्राज्य का हित साधन करने के लिए विदेशियों में फूट डाल सकें। अब राजदूत भाषण में ही प्रवीण न होकर विदेशियों की आंतरिक दुर्बलताओं का अध्ययन कर उनकी सूचना अपने सम्राटों को देने लगे। अब राजनयिकों के गुण तीन माने जाने लगे- (i) गहरे अवलोकन की क्षमता, (ii) लम्बा अनुभव तथा, (iii) निष्पक्ष निर्णय देने की क्षमता। निकलसन के मतानुसार, "भाषण देने वाले राजदूत का स्थान विशेषज्ञ राजदूत ने ले लिया तथा भाषणकर्ता के स्थान को प्रशिक्षित अवलोकनकर्ता ने ले लिया।" ("Even as the orator type replaced the primitive herald type, so also the orator gave to the trained observer."-Nicolson)

इटली का राजनय (Diplomacy of Italy)

इटेलियन युग अथवा मध्यकाल में राजनयिक आचार की प्रगति में बाधा पड़ी। युद्ध प्रवृत्ति बढ़ी तथा राजनीतिक संस्थाओं का विकास रुका। यह काल यूरोप के लिए अंधकार युग था। पर धीरे-धीरे साम्राज्य की प्रवृत्ति कम हुई। मुसलमान और ईसाइयों के बीच संघर्ष चला। तब ईसाई राज्यों में संबंध की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इटली में सर्वप्रथम राजदूतों का आदान-प्रदान प्रारंभ किया। इस कारण इटली को आधुनिक संगठित और व्यावसायिक राजनय का जनक माना जाता है। यह माना जाता है कि प्रथम दूतावास की स्थापना मिलान के ड्यूक फ्रॉसेस्को स्फोजा ने सन् 1455 में जेनेवा में की थी। इसके बाद 1496 में वेनिस सरकार ने दो व्यापारियों को उप-राजदूत बनाकर लंदन भेजा। कुछ समय बाद इटली के अन्य राज्यों ने भी लंदन, पेरिस और अन्य यूरोपीय राजधानियों में अपने दूतावासों की स्थापना की। 16वीं शताब्दी के अंत तक स्थायी दूतावास नियुक्त करने की प्रथा को अधिकतर यूरोप के राज्यों ने भी अपना लिया। निकलसन के मतानुसार, "इस प्रकार इटली में 13वीं तथा 16वीं शताब्दी के बीच राजनय के विशेषज्ञ उत्पन्न हुए।" जी. मुखर्जी का कहना है कि, "बह राजनय जो 'इटली की राजनय की व्यवस्था' के नाम से जाना जाता है, मैकियावेली के प्रिंस नामक पुस्तक की देन है।" इटली उस समय छोटे-छोटे स्वतंत्र नगर राज्यों में विभाजित हो चुका था। वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे और अपनी शक्ति को खत्म कर रहे थे जिसके परिणामस्वरूप चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। फिशर के अनुसार, "विदेशी शक्तियों-फ्रांस, स्पेन के जर्मनी के शक्ति संघों ने इटली को उनकी रणस्थली बना दिया था।" फ्रांस, स्पेन तथा जर्मनी आदि का बाहरी शक्तियों से आपसी मनमुटाव तथा संघर्ष सतत रूप से चलता रहता था। इन परिस्थितियों में राजनय का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया शक्तिहीन अथवा कमज़ोर राज्य अपनी आत्मरक्षा तथा स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए राजनयिक तरीकों से शक्तिशाली राज्य से मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित कर लेते थे।

मध्य युग में राजनयिक कला में सबसे अधिक पारंगत राज्य वेनिस गणराज्य था। वेनिस पर वाइजेण्टाइन की राजनयिक विचारधारा का काफी अधिक प्रभाव था। दोहराव तथा संदेह के दोषियों के राजनय में भी स्पष्ट होते हैं। वेनिस के अतिरिक्त इटली के अन्य राज्यों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। वे प्रायः कमज़ोर थे। उनके पास अपनी राष्ट्रीय सेना नहीं थी। सैनिक कमजोरी के कारण वे आत्मरक्षा के लिए राजनय की ओर मुड़े। उस समय उनका राजनय किसी आदर्श विचार से था। दीर्घकालीन लक्ष्य से संबद्ध नहीं था बल्कि वे तत्कालीन हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते थे। उस समय के वातावरण में राजनयिक समझौतों में चालाकी, छल-कपट, झूठ और धूर्तता को अपनाया जाता था। उस समय के राजदूतों का काम था अपने राज्यों को उस विदेश (जहाँ वह नियकत होते थे) की गतिविधियों के बारे में सूचित करना।

इयूमा के उपन्यासों में स्पेन के राजदूत का चरित्र-चित्रण करते हुए उसका काम बताया गया-

(i) विभिन्न दलों के नेताओं को रिश्वत देकर उनमें फूट डालना।

(ii) राजद्रोहियों को परामर्श देना।

(iii) राजपरिवार में फूट डालना।

इटली के राज्यों-जिनेवा, वेनिस, मिलान, फलोरेन्स, नेपिल्स तथा पेपसी में बाकायदा राजदूतों का आदान-प्रदान होता था। इस राज्यों में पास-पास होने के कारण घनिष्ठ संबंध पैदा हुए।

राजनयिक सिद्धान्तों का विकास बड़ी तेजी से तब हुआ जब राजदूतों का पद स्थायी हो गया। इस कार्य में इटेलियन राज्यों की परंपरा अन्य राज्यों ने भी अपनाई। मुसलमानों के आक्रमण के खतरे ने राजनयिक आचार के विकास में बड़ी सहायता दी। इन स्थायी राजदूतों का महत्त्व यूरोपीय देशों तथा पूर्वी देशों के बीच व्यापार तथा वाणिज्य ने भी बढ़ा दिया। इटली के राज्य छोटे-छोटे थे और अपनी सुरक्षा के लिए एक-दूसरे से कपटपूर्ण संचि कर शक्ति संतुलन बनाये रखते थे।

राजनयिक सेवा का प्रादुभार्व पुनरुत्थान (Renaissance) काल में हुआ। इस काल में वेनिस राज्य ने पहल की इसलिए उसे राजनीतिक आधार की जन्मभूमि कहा गया। वेनिस राज्य ने राजदूतों के लिए आचार-संहिता (Code of Conduct) का

निर्माण 13वीं शताब्दी में कर लिया था। बाद में योग्य राजदूतों का विकास हुआ। इन राजदूतों को इटली के अंदर ही दूर देशों में भी भेजा जाने लगा। 1460 में सेवाय ने रोम में अपना स्थायी राजदूत भेजा। 1496 में वेनिस ने लंदन में तथा 1519 में लंदन ने फ्रांस में अपना राजदूत भेजा। 19वीं शताब्दी के पेनिस के राजदूत स्वीट जरलैण्ड, तरान, नेपल्स, मिलान तथा लंदन में उसने राजदूत भेजे। फ्रांस तथा स्पेन में भी उसने राजदूत भेजने की व्यवस्था की। फ्लोरेन्स ने भी वेनिस के पश्चात् अपने राजदूत विभिन्न देशों को भेजे। दान्ते (Danto), प्लुटार्क (Plutarch), बोकोशियो (Boccaccio), मैकियावेली (Machiavelli) तथा गुशियारदीनी (Guicciardini) आदि राजनयज्ञों के उत्पन्न करने का श्रेय फ्लोरेन्स की है।

मैकियावेली का योगदान (Contribution of Machiavelli)- वैदेशिक संबंधों के संपर्क में रहने के कारण मैकियावेली को राजनीतिक और कूटनीतिक मामलों के बारे में अध्ययन करने का बहुत अधिक मौका मिला। सचिव होने के नाते उस युद्ध परिषद् की चर्चाओं का आलेख रखने, प्रतिवेदनों का सारांश लिखने और पत्र-व्यवहार करने का मौका मिलता था और यूरोप के अन्दर की राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती थी। उन्हें इतिहास का अच्छा ज्ञान तो था ही इसीलिए उसके आधार पर नवीन समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर लेने में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त हो गई थी। उन्हें इस बात की बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी कि वे विदेशी सरकारों के साथ सीधे संपर्क स्थापित कर इटली के महान् राजनीतिक नेता बन जायें। कुछ दिन पश्चात् उन्हें फ्रांस के लुई बारहवें के साथ बात करने के लिए एक शिष्टमण्डल के नेतृत्य का मौका मिला, जिसमें उन्हें काफी सफलता मिली और लोगों से अच्छे कूटनीतिज्ञ होने के नाते सम्मान मिला। इसके बाद उन्हें कई प्रशासकों के साथ बात करने का मौका मिला बिशप सोडेरनी तथा सीजर बोर्गिया (Caesar Borgia) के साथ फलोरेन्स के संबंधों की स्थापना का। बोर्गिया के प्रभाव में मैकियावेली की सारी कूटनीति चालबाजियों के द्वारा बहुत सफलता प्राप्त की थी। इससे वह मैकियावेली के लिए आदर्श शासक बन गया।

राज्य सिद्धान्त में मैकियावेली इंसानवित के उन सब सिद्धान्तों को अस्वीकार करता है जो शासक को नम्रता, विनय आदि का पाठ पढ़ाते हैं। वह अपने 'प्रिन्स' को किसी प्रकार की नैतिक सीमाओं में नहीं बांधता । मैकियावेली के अनुसार राज्य के उद्देश्यों को प्राप्त करने, उसे एकीकृत करने और शक्तिशाली बनाने के लिए राजा द्वारा आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के अर्थात् नैतिक, अनैतिक, अच्छे-बुरे, वैध-अवैध साधन अपनाए जा सकते हैं। मैकियावेली 'प्रिन्स' को छल, कपट, जालसाजी, धोखाधड़ी, विश्वासघात, हिंसा, दमन, सभी प्रकार के अनैतिक साधनों के प्रयोग की आज्ञा देता है। मैकियावेली की धारणा है कि राज्य की सुरक्षा और कल्याण के मार्ग में नैतिक विचारों का बाधित नहीं होने दिया जाना चाहिए। उसके अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि राजा के लिए अपने वचन का पालन करना और नीतिपूर्वक आचरण करना कितना प्रशंसनीय है तवापि हमारी आंखों के समक्ष जो कुछ पटा है, उसमें हम देखते हैं कि केवल उन्हीं राजाओं ने महान् कार्य किए हैं जिन्होंने चालाकी में दूसरों को पीछे छोड़ दिया है।"

मैकियावेली किसी कार्य की अच्छाई-बुराई से चिन्तित नहीं था जितना कि वह उसके 'प्रभाव' से चिन्तित था। उसने लिखा है, "राजा को राज्य की सुरक्षा की चिन्ता रहनी चाहिए, साधन तो सदैव आदरणीय ही माने जायेंगे और सामान्यतया उनकी प्रशंसा ही की जाएगी।"

मैकियावेली एक महान राष्ट्रवादी था, जो इटली की एकता का स्वप्न देखता था। उसके विचार में आपसी फूट और कमजोरी इटली की स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी। इसलिए उसने एक दृढ़ शक्तिशाली और शीघ्र निर्णय लेने वाले राजा का समर्थन किया जो अपने कुशल तथा चातुर्यपूर्ण राजनय द्वारा इटली की एक करके उसे फ्रांस, स्पेन तथा जर्मनी को दासता से मुक्ति दिला सके। उसने राजा के पथ प्रदर्शन के **लिए 'द प्रिन्स' (The Prince) नामक ग्रंथ की** रचना की। इसे राजनय की एक युग-प्रवर्तक कृति माना जाता है। इस ग्रंथ में दिये गये सिद्धान्तों ने राजनय के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। 'द प्रिन्स' में मैकियावेली ने राजा को जो शिक्षा दी, उनसे 'मैकियावेली राजनय' (Machiavellian Diplomacy) के दर्शन होते हैं।

'प्रिन्स' के 18वें अध्याय में मैकियावेली ने उन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जिनके आधार पर राजा को अपना अचर्ण करना चाहिए। **मैकियावेली 'शक्ति ही सत्य' (Might is Right) में विश्वास करता है।** अतः मैकियावेली राजा को अधिकाधिक शक्ति

प्राप्त करने, उसे बनाए रखने और उसका विस्तार करने के लिए निर्देश देता है। इस संबंध में उसका विचार है कि शासक का मूल कर्तव्य बाहरी आक्रमण से सुरक्षा और आंतरिक क्षेत्र में शांति तथा व्यवस्था बनाए रखना है और यह कार्य शक्ति के आधार पर ही संभव है। मैकियावेली के द्वारा अपने 'प्रिन्स' के साम, दाम, दण्ड और भेद का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है। राजा को जनता के सामने मानवोचित गुणों का प्रदर्शन करना चाहिए जिसे लोग समझें कि राजा बहुत सद्गुणी है, परन्तु उसे सद्गुणों का दास नहीं हो जाना चाहिए। राजा के द्वारा अपने राज्य के नागरिकों और अन्य राज्यों के शासकों को जो वचन दिए गए हैं, उनका महत्त्व है, लेकिन उनका पालन तभी तक किया जाना चाहिए, जब तक ऐसा करना राज्य के हित में हो। **मैकियावेली** के अनुसार राजा में शेर और लोमड़ी दोनों के गुण होने चाहिए। लेकिन अपने लोमड़ी के स्वरूप को छिपाए रखने के लिए राजा को उच्चकोटि का बहुरूपिया होना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर अपने वचन भंग करने के लिए लोमड़ी की चाल से काम लेना चाहिए। राजा को राज्य की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना का गठन करना चाहिए। उसे किराए की सेना पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। उसकी मान्यता है कि सैनिक शक्ति का विस्तार किया जाना चाहिए। 'विस्तार करो या नष्ट हो जाओ' की कहावत सही है। ग्रीक नगर राज्य स्थायी होने के कारण ही नष्ट हुए। युद्ध की स्थिति से न केवल सैनिकों में बल्कि साधारण नागरिकों में भी अनुशासन, देश-भक्ति, एकता और कठोर जीवन की आदत का विकास होता है। मैकियावेली के अनुसार शासक के लिए युद्ध में वीरता और शौर्य का प्रदर्शन करने से अधिक सम्मानजनक बात और कुछ भी नहीं है। मैकियावेली ने कहा है, "राजा का मुख्य कर्तव्य है राज्य को कायम रखना और उसके लिए चाहे जो भी साधन-नैतिक या अनैतिक-अपनाये जायें सभी प्रशंसा के पात्र हैं।" राज्य के निर्माण के लिए यदि पूरे गणराज्य के नागरिकों की हत्या करनी पड़े, लोगों से विश्वासघात करना पड़े, उनकी छल-कपट से हत्या की जा सके, अपने वादों से दूर हटा जा सके और अंतिम दर्जे की क्रूरता की जा सके तो ऐसा करना सफल राजा की पहचान होगी। मैकियावेली ने अपने ग्रंथ 'डिसकोर्सेज' (Discourses) में स्पष्ट लिखा है, "मैं यह विश्वास करता हूँ कि जिन राज्य का जीवन संकट में हो तो राजाओं और गणराज्यों की रक्षा के लिए विश्वासघात तथा कृतघ्नता का प्रदर्शन करना चाहिए।" उसका स्पष्ट मत था कि सांसारिक सफलता सबसे बड़ा साध्य है, जिसे पाने के लिए अनैतिक साधनों का अपनाना आवश्यक है। साध्य की सफलता साधनों को पवित्र बना देती है। यही तो मैकियावेली का वह महान उपदेश है जिसका पाठ आधुनिक राजनीति रोज करती है।

इस प्रकार की राजनीति का भक्त प्रायः सारा संसार हो चुका है। कूटनीति 'पावर पॉलिटिक्स' (Power Politics), अवसरवादिता, विस्तारवाद, अधिनायकवाद, निरंकुशता और उसकी संतान भ्रष्टाचार, पक्षपात, दम्भ, मिथ्या प्रदर्शन, आत्म-विज्ञापन, दूसरे राज्यों में तोड़फोड़, गृहयुद्धों को प्रोत्साहन, लुक छिपकर अस्त्र-शस्त्रों की पूर्ति। 'कूप दी तात' (Coup d'etat) मैकियावेली का ही स्वरूप हैं जो आज की राजनीति में विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

मैकियावेली के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राजा की नीति शक्ति संतुलन बनाए रखने की होनी चाहिए। उसे हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने पड़ोसी राज्यों को आपस में संधि में न बंधने दें। उस पड़ोसी राज्यों के आंतरिक मामलों में निरंतर हस्तक्षेप की नीति अपनानी चाहिए और पड़ोसी राज्यों का प्रलोभन अथवा शक्तिबल द्वारा अपना मित्र बनाने का प्रयास करना चाहिए। जिन राज्यों को वह जीत लेता है, उन्हें अपना उपनिवेश बनाकर वहाँ एक शक्तिशाली सेना को रखना चाहिए। उसने शासक को युद्ध के बारे में भी परामर्श दिया है और कहा है कि उसे यथासम्भव घेरा डालने की बजाए खुले मैदान में युद्धनीति अपनानी चाहिए।

मैकियावेली द्वारा प्रतिपादित राजा के आचरण और कर्तव्य की धारणाओं को देखने से ऐसा लगता है कि यथार्थवादी विचारक है। उसके ये कचन कितने यथार्थवादी हैं- "राजा में शेर की शूरता और लोमड़ी की चालाकी होनी चाहिए", यदि "संभव हो तो राजा को एक ही समय में अपना सौम्य और रौद्र रूप प्रदर्शित करना चाहिए।" राज्य संबंधी दार्शनिक तत्त्वों की अपेक्षा उसकी दृष्टि यथार्थवादी राजनीतिक प्रश्नों पर ही अधिक रही है और उसने राज्य की अपेक्षा शासन कला पर अधिक ध्यान दिया है। उसने अपने ग्रंथ 'प्रिन्स' में शासन की कला का विस्तार से विवेचन किया है। संक्षेप में, उसके विचार शासक के लिए हैं क्योंकि प्रिंस शासन कला पर एक उच्चकोटि की कृति है।

मैकियावेली के राजदर्शन की कड़ी आलोचना की गई है। मैकियावेली ने राजनीति के क्षेत्र में धर्म और नैतिकता की घोर अपेक्षा की है। वह उन्हें साध्य समझने के बजाये राज्य के हित साधने वाले साधन के रूप में प्रस्तुत करता है। इस तरह उसने राजनीतिक के भ्रष्ट होने का मार्ग खोल दिया। फोक्स की यह उक्ति, "नैतिक रूप से जो गलत है, वह राजनीतिक रूप से कभी

सही नहीं हो सकता।" मैकियावेली के सिद्धान्त की अपेक्षा सत्य के कहीं अधिक निकट है। उसे आलोचकों द्वारा युद्ध-लोलुप, नीतिहीन, धर्महीन, नीच व्यवहार का समर्थक, धोखेबाज, कुटिलता का पोषक और अमानवीय कहा गया है। मैकियावेली अवसरवादी राजनीति का प्रणेता है। उसने अपने राजा को अवसरवादी बनाकर अपना काम निकालने की बार-बार सलाह दी। इस संबंध में हेरोल्ड निकोल्सन का कहना है कि मैकियावेली को उसके समय की परिस्थितियों के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। उसने तत्कालीन इटली के दोषों का निराकरण करने के लिए अपने विचार प्रस्तुत किए। उसने उसी प्रभावशाली सत्य का प्रतिपादन किया जिनका अनुभव उसने अपने जीवनकाल में किया था। सेबाइन ने उसे राजनीति या राजनीतिक विचार की अपेक्षा कूटनीतिज्ञ ही अधिक माना है। मैकियावेली के विचार राजनय के समय में बहुत महत्त्व रखते हैं।

इटालियन राजनय की देन (Contribution of Italian Diplomacy)-इटली के राज्यों ने पारस्परिक समझौतों की जिस कला का विकास किया। वह धीरे-धीरे अन्य राज्यों द्वारा अपना ली गई। यद्यपि इटली राजनय बड़ा बदनाम है परंतु हेरोल्ड निकोल्सन ने इटली राजनय की देन को स्वीकार किया है। उसने इटली के राजनय के क्षेत्र में देन को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत बताया है-

1. संधियों के लिए समझौते (The Negotiations of Treaties)-15वीं शताब्दी में इटली में सामंतवादी परंपराओं और पोप की सर्वोच्चता के कारण संधियों के लिए की जाने वाली समझौता वार्ताएं बहुत जटिल बन गई थी। इन कठिनाइयों के होते हुए भी इटली के राज्यों के बीच समझौता वार्ताएं प्रायः होती रहती यी और संधियां सम्पादित की जाती थीं। पोप द्वारा स्वीकार की गई संधियां बाध्यकारी होती थीं। संधि के अनुमोदन के लिए बड़ी धूमधाम से समारोह किया जाता था। ऐसा माना जाता था कि सर्वशक्तिमान सम्पन्न राजदूत को संधि करता तो राजा को सम्प्रभु द्वारा स्वीकार कर लिया जाता था। यदि ऐसा नहीं होता तो संघि का कोई महत्व नहीं रहता था।

2. सम्मेलनीय राजनय (The Diplomacy by Conferences)-15वीं शताब्दी में सम्मेलन द्वारा राजनय का अधिक महत्त्व नहीं था। इसको लोग द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। इसमें यह शंका रहती थी कि कहीं एक राजा दूसरे राजा का अपहरण न कर ले। 1807 में नेपोलियन ने इसे समाप्त कर दिया।

सम्मेलन राजनय के अनेक दोष थे। सम्मेलन राजनय का तरीका काफी खर्चीला था। इसमें धन का खुलकर अपव्यय होता था क्योंकि प्रत्येक पक्ष यह प्रदर्शित करना चाहता था कि वह अधिक सम्पन्न है। सम्मेलन राजनय का एक अन्य दोष यह था कि सम्मेलन से पूर्व दोनों पक्ष जनता की महत्त्वाकांक्षाओं को बढ़ा देते थे। दूसरी ओर विदेशों में उनके इरादों पर संदेह किया जाता था जिसके कारण अनेक अफवाहें फैल जाती थीं। इसका यह भी एक दोष था कि सम्मेलनों में होने वाले समझौते लिखित न होकर मौखिक होते थे जिसके फलस्वरूप गलतफहमी के अवसर बढ़ जाते थे। इसका एक दोष और भी था कि इस साक्षात्कार में दो पक्ष होते थे। दोनों पक्ष एक-दूसरे की भाषा को नहीं समझ पाता था जिससे यह सम्मेलन मित्रता कम शत्रुता अधिक बढ़ाता था। फिलिप डी कोमिंस का यह कथन उल्लेखनीय है कि, "यदि दो महान् राजा परस्पर अच्छे संबंध बनाना चाहें तो उन्हें कभी भी आमने-सामने नहीं आना चाहिए, बरन् अच्छे तथा बुद्धिमान राजदूतों के माध्यम से बात करनी चाहिए ।"

3. अग्रत्व की समस्या (The Problem of Precedence)-इटली राजनय में अग्रत्व की समस्या बहुत गंभीर थी। प्रत्येक राजदूत का स्तर राज्य के स्तर के अनुरूप होता था। प्रत्येक रातदूत सबसे आगे रहना चाहता था। इस समस्या के समाधान के लिए 1504 में पोप जूलियस द्वितीय ने एक तालिका का निर्माण किया जिसमें सबसे ऊपर रोम, उसके बाद फ्रांस, स्पेन आदि थे। सातवें नम्बर पर इंग्लैण्ड का स्थान था। पोप की शक्ति खत्म होने पर राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय हुआ और उसके साथ ही उक्त सूची का क्रम भी टूट गया। स्पेन ने अपना स्थान फ्रांस के बाद आने से इंकार कर दिया। इस आन्तरिक विरोध के फलस्वरूप राजदरबारों की स्थिति, समझौता वार्ताओं और संधियों पर होने वाले हस्ताक्षरों में परिवर्तन आया। राज्यों के अग्रत्य का निर्धारित करने का कोई निश्चित तरीका न होने के कारण अनेक बार संघर्ष पैदा हो जाते थे। यहाँ तक कि राजदूतों को महल युद्ध के लिए भी तैयार होना पड़ता था। अग्रत्व की व्यवस्था से संधियों पर हस्ताक्षर करते समय भी कठिनाई पैदा होती थी। प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधि संधि पर पहले हस्ताक्षर करना चाहता था। अग्रत्व और हस्ताक्षर के मामले को लेकर झगड़ा 1815 तक चलता रहा। 1815 में वियना कांग्रेस में वरिष्ठता का सिद्धान्त लागू किया गया। 1818 में एकस-ला-चेपेल की संधि में

हस्ताक्षर-कर्ता राज्यों को वर्णमाला के क्रमानुसार होने से समस्या हल हो गई।

बीसवीं शताब्दी में इटली के राजनय का मूल उद्देश्य स्वार्थ सिद्धि रहा। इसकी पूर्ति के लिए अवसरवादी और धूर्ततापूर्ण ढंग अपनाये गये। किसी देश से स्वार्थ सिद्धि के लिए वह पहले अपने संबंध बिगाड़ लेते थे, फिर मनमानी शर्तें रखकर उसे नए सिरे से वार्ता के लिए निमंत्रण दिया जाता था। संबंध सुधारने के आश्वासन के बदले में वे अपनी आकांक्षा पूरी कर लेते थे। यह कहा जा सकता है कि इटली की पुनर्जागृति ने राजनय की जो प्रणाली विकसित की वह भ्रमपूर्ण और काफी स्पर्द्धापूर्ण थी। धोखेबाजी, अवसरवादिता तथा स्वामीभक्तिपूर्ण जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर इटली ने राजनय की कला को निंदनीय बना दिया।

परन्तु उपर्युक्त कमी के बावजूद इटेलियन राजनय ने संगठित राजनयिक सेवा का विकास प्रारंभ किया। राजनय का नैतिकता की जकड़न से मुक्त करके इसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया। राजनय के क्षेत्र में इटली के योगदान को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इटली को 'वर्तमान व्यवस्थित एवं व्यावसायिक राजनयिक की जननी कह सकते हैं।

फ्रांस का राजनय (Diplomacy of France)

इटेलियन राज्यों ने जो राजनयिक आचार का विकास किया वह दूषित था। राजनय का जो रूप 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में दूषित हुआ उसका उत्तरदायित्त्व इटेलियन राज्यों पर ही है। इस दूषित राजनय को शुद्ध तथा पवित्र बनाने में फ्रांस ने बड़ा सहयोग दिया। फ्रांस के प्रसिद्ध राजनयज्ञ डी कैलोरीज (De Callieres) ने कहा है कि, "स्वस्य राजनय विश्वास एवं निष्ठा उत्पन्न करने की क्रिया पर आधारित होता है, जिसको सच्चाई एवं सद्भावना के द्वारा ही मूर्त रूप दिया जा सकता है।" सर्वप्रथम फ्रांसिस प्रथम ने राजनयिक सेवा की स्थापना की। उसने अनेक योग्य राजनयिक नियुक्त किये, जैसे कोम्बन्स (Combons), युसर (Jusser) and, बरेरे (Barrere) तथा बर्थला (Bearthlot) आदि। इन आदर्श राजनयिकों ने फ्रांसिस प्रथम को बहुत प्रसिद्ध कर दिया। सुव्यवस्थित राजनयिक सेवा (Well Organised Diplomatic Service) का श्रेय फ्रांस को मिला जो आधुनिक राजनयिक सेवा का आधार बना।

राजनयिक आचार की दृष्टि से फ्रांस का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। फ्रांसीसी राजनय को दो विचारकों ने बहुत अधिक प्रभावित किया। वे थे- ग्रोशियस तथा रिचलू। इनमें से एक तो अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता था और दूसरा राष्ट्रीय राजनीतिज्ञ था। दोनों के राजनय संबंधी विचारों के आधार पर ही फ्रांसीसी राजनय के आधार का रूप निर्धारित है।

ग्रोशियस के विचार (Hugo Grotius on Diplomacy)-ग्रोशियस की रचनाओं पर अपने समय की परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा पहली परिस्थिति थी उसके समय में प्रचलित शासक वर्ग की आम धारणा। ग्रोशियस शासक वर्ग के सिद्धान्त का विरोधी था। उसने निरंकुश राजतंत्र समर्थन करते हुए भी इसका विरोध किया। ग्रोशियस के विचारों पर प्रभाव डालने वाली दूसरी परिस्थिति उस समय व्याप्त हिंसक धार्मिक संघर्षों की प्रवृत्ति थी। छोटी-छोटी और महत्त्वहीन बातों को लेकर बड़े उग्र विवाद हो रहे थे और उन विवादों को लेकर धार्मिक अल्पमतों का दमन किया जा रहा था। अपने समय के धार्मिक संघर्ष की दृष्टि से ग्रोशियस ने कहा कि प्रोटेस्टेन्ट एवं कैथोलिक मतानुयायियों का एक-दूसरे पर अपने विचारों का आरोपित करना अर्थहीन है। यदि ये विरोध और संघर्ष के स्थान पर प्रेम तथा सहयोग से सोचें तो मानवता अनेक कष्टों से मुक्त हो सकती है। उस पर प्रभाव डालने वाली एक अन्य परिस्थितियों में ग्रोशियस बहुत उत्तेजित और प्रभावित था और इन्हें समाप्त करने के लिए वह विभिन्न राज्यों के पारस्परिक संबंधों को निर्धारित करने वाले कुछ ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का निर्धारण करना चाहता था, जिनके प्रयोग से एक-दूसरे के साथ राज्यों का व्यवहार सभ्य हो सके।

ग्रोशियस ने अपने विचारों का प्रतिपादन निम्नलिखित ढंग से किया है-

प्राकृतिक कानून (Jus Naturale)- ग्रोशियस मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानता है तो उसके द्वारा निर्मल समाज के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए और उसका संचालन करने के लिए कानून का होना आवश्यक है। उसका मत है कि मनुष्य सिर्फ सामाजिक प्राणी ही नहीं विवेकशील प्राणी भी है और उसकी समाज व्यवस्था उसके विवेक का परिणाम होती है। अतः समाज व्यवस्था के संचालन के लिए निर्मित कानून भी विवेक से उत्पन्न होते हैं। ग्रोशियस के अनुसार प्राकृतिक कानून

अपरिवर्तनशील और सार्वभौम है। इसके सारभूत तत्त्व न्याय तथा सत्य हैं तथा इसका आधार उपयोगिता के बजाय मानव का विवेक है, जो समस्त कानूनों का स्रोत है। ग्रोशियस प्राकृतिक कानून की विचारधारा को मानव विवेक पर आधारित करके उसे तर्क युक्त और नैतिक स्वरूप प्रदान करता है और इसलिए उसे सार्वभौम और शाश्वत बतलाता है। अतः उसके अनुसार इसका पालन सभी मनुष्यों और राज्यों द्वारा किया जाना चाहिए प्राकृतिक कानून राजाओं, संस्थाओं एवं सरकारों से स्वतंत्र और इनसे अधिक प्राचीन और स्थायी होता है। जब तक मानवता इस प्राकृतिक कानून को स्वीकृत और मान्यता नहीं देती तब तक अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का समाधान नहीं हो सकता। प्राकृतिक कानून का सामान्य रूप से पालन किए बिना शक्ति-संतुलन का सिद्धान्त खतरनाक सिद्ध होगा।

प्राकृतिक कानून को प्रकाशित करने वाली कोई संस्था होनी चाहिए उस समय भी यह प्रश्न उठा था। ग्रोशियस का मत था कि ईसाइयों के राज्यों को एक ऐसा निकाय स्थापित करना चाहिए जहाँ प्रत्येक राज्य के विवादों को निःस्वार्थ पक्षों द्वारा सुलझाया जा सके। बुद्धिपूर्ण शर्तों को लागू करने के लिए कुछ साधन भी होने चाहिए।

ग्रोशियस द्वारा क्षेत्र-बाध्यता (External Territoriality) के सिद्धान्त को प्रतिपादन किया गया था। उसने राजनयिक प्रतिनिधियों के विशेषाधिकारों और स्वतंत्रताओं का विस्तार से वर्णन किया है। ग्रोशियस का कहना था कि राजनयिकों का स्वागतकर्ता राज्य के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाना चाहिए। उसका अन्तर्राष्ट्रीय संधियों के बारे में मत था कि ये न केवल कर्ता पर ही बल्कि उत्तराधिकारी पर भी लागू होती है। ग्रोशियस का ऐसा भी कहना था कि परिस्थितियों के बदलने पर संधियों को अस्वीकार किया जा सकता है।

डनिंग के अनुसार ग्रोशियस का योगदान इस बात में है कि अपने युग की आवश्यकता के अनुकूल उसने राज्यों के आपसी संबंधों के संदर्भ में उनके अधिकारों और कर्तव्यों का विवेचन किया, क्योंकि उसके समय में सार्वभौम ईसाई समाज की एकता का सिद्धान्त खंडित हो चुका था। फलतः यूरोप के विभिन्न राष्ट्र जंगली पशुओं की तरह से हिंसक होकर आपस में एक-दूसरे से लड़ रहे थे और बर्बरता का परिचय दे रहे थे। इसलिए उन्हें रोकने के लिए उस वक्त अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों और कर्तव्यों के एक ऐसे विचार की आवश्यकता थी, जो धार्मिक न हो। ग्रोशियस ने अपने विचारों के द्वारा ऐसा विचार प्रदान किया और उसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून की आधारशिला रखी जिसका कि महत्त्व आधुनिक युग में निरंतर बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार ग्रोशियस ने राज्यों को अराजकता की स्थिति से मुक्त कर उन्हें व्यवस्था प्रदान की और अपने विचारों के माध्यम से अन्तरर्राष्ट्रीय कानून के विकास का क्रम प्रारंभ करके राजनय के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

रिचलू के विचार (Richelieu on Diplomacy)-रिचलू एक यथार्थवादी विचारक था। उसने राजनय के सिद्धान्त और व्यवहार में कुछ सुधार पेश किये। उसके विचार निम्न रूप में हैं-

1. राजनय का उद्देश्य अवसरवादी प्रबन्ध नहीं बल्कि स्थायी तथा दृढ़ संबंधों को स्थापित करना है। इसके लिए धैर्य से संधिवार्ता करनी चाहिए। असफल संधिवार्ता भी निरर्थक नहीं होती क्योंकि उससे ज्ञान तथा अनुभव बढ़ता है जो भविष्य में काम आता है। राजनय निरन्तरतापूर्ण प्रक्रिया है।

2. रिचलू के अनुसार अपनी नीति को सफल बनाने के लिए जनमत का समर्थन प्राप्त करना जरूरी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रचार-व्यवस्था का उचित प्रबंध करना चाहिए।

3. रिचलू के अनुसार राज्य का हित प्राथमिक और आंतरिक होता है। यदि राष्ट्रीय हित विरोधी विचारधारा वाले राज्य से संचि करने की मांग करते तो बिना किसी संकोच के उसे किया जाना चाहिए। संकट के समय मित्रों का चुनाव भौतिक और भौगोलिक मूल्यों के आधार पर किया जाना चाहिए।

4. रिचलू का मत था एक सही राजनय में निश्चितता रहनी चाहिए। यदि किसी वार्ता के बाद समझौता न हो सके तो चिन्ता की बात नहीं है, लेकिन यदि यह समझौता अनिश्चित और अस्पष्ट भाषा में हो तो यह चिन्ता की बात है। निश्चितता के अभाव में संधि के पक्षों के बीच आदान-प्रदान के संबंध स्थापित नहीं हो सकते।

5. रिचलू का कहना था कि संधि एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसलिए इसे करने से पूर्व सावधानी बरतनी चाहिए। एक बार जब

संधि पर समझौता, हस्ताक्षर तथा अनुसमर्थ हो जाए तो उसका पालन अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

6. रिचलू का कहना था कि विदेश नीति का निर्देशन तथा राजदूत का नियंत्रण एक ही मंत्रालय में केन्द्रित होना चाहिए, अन्यथा समझौता वार्ताएँ प्रभावहीन सिद्ध होंगी। निकलसन के अनुसार, "यदि उत्तरदायित्व को बिखेर दिया जाए तो राजदूत एवं उससे संधि करने वाला दूसरा पक्ष भी भ्रम में पड़ जाएगा।"

फ्रांसीसी राजनय की देन (Contribution of French Diplomacy)-17वीं और 18वीं शताब्दियों में राजनयिक आचार की दृष्टि से फ्रांस द्वारा स्थापित राजनयिक परंपराओं का यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा अनुसरण किया गया। फ्रांस के राजनय की निम्नलिखित देन है-

1. लुई 14वें का योगदान (Contribution of Louis XIV)-फ्रांस के राजा लुई चौदहवें (Louis XIV) के मंत्रिमंडल में विदेश मंत्री एक स्थाई सदस्य होता था। राजा विदेश मंत्री की नियुक्ति करता था। जब तक राजा चाहता था तब तक विदेश मंत्री अपने पद पर रह सकता था। साधारणतः विदेश मंत्री विदेशी राजदूतों का स्वागत करता था और विदेशों में फ्रांसीसी राजदूतों को निर्देश भेजता था। परन्तु कभी-कभी यह कार्य राजा स्वयं कर लेता था। लुई चौदहवाँ स्वेच्छाचारी होते हुए भी धैर्यपूर्वक अपने द्वारा नियुक्त मंत्रियों के विचारों को सुनता था। वह विदेशी मंत्रालय से परामर्श करके अपना निर्णय देता था।

2. विदेश कार्यालय (Foreign Office)-विदेशमंत्री के अधीन एक छोटा विदेश कार्यालय होता था जिसमें कुछ क्लर्क और अन्य अधिकारी होते थे। फ्रांस की विदेश सेवा अन्य राज्यों की अपेक्षा काफी व्यापक थी। 1685 तक फ्रांस ने अपने स्थायी दूतावास रोम, वेनिस, कान्स्टेनटिनोपाल, हेग, वियना, लंदन, मेड्रिड, लिम्बन, म्यूनिख, कोपन हेगन और बेरने में स्थापित कर लिए थे। उसने कुछ राज्यों में अपने विशेष मिशन भेजे और कुछ राज्यों में आवास मंत्री (Residents Ministers) रखे। उसने राजनयिकों को अनेक श्रेणियों में विभाजित कर रखा था असाधारण राजदूत (Extra-Ordinary Ambassadors), साधारण राजदूत (Ordinary Ambassadors), दूत (Envoys) तथा आवासी (Residents)। बाद में साधारण और असाधारण का भेद समाप्त करके असाधारण शब्द लगा दिया। जिन राजदूतों पर विश्वास बना रहता था, वे 3-4 वर्ष तक अपने पद पर कार्य करते रहते थे। यदि राजदूत का स्वागतकर्ता सम्प्रभु मर जाता था तो उसे दोबारा प्रमाण-पत्र प्राप्त करना होता था। युद्ध काल में राजदूतों को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता था। उन्हें स्वदेश जाते समय लूट लिया जाता था।

3. राजनयिक निर्देश (Diplomatic Directions)- जब राजदूत अपना पद संभालने जाता था तब उसे लिखित निर्देश दिए जाते थे। इन दस्तावेजों को बड़ी सावधानीपूर्वक तैयार किया जाता था। इसमें राजदूत द्वारा अपनाई जाने वाली नीति का उल्लेख होता था। इसमें स्वागतकर्ता राज्य की राजनीतिक स्थिति का भी पूरा विवरण होता था। इस दस्तावेज में संबंधित राजनीतिज्ञों और राजनयज्ञ साथियों की प्रकृति, व्यवसाय एवं पृष्ठभूमि का विवरण होता था। समय के साथ-साथ इन निर्देशों के ज्ञापनों का स्वरूप जटिल होता गया।

4. राजनयिक तौर-तरीके (Diplomatic Methods)-फ्रांस ने अपने राजनय में हमेशा उचित तौर-तरीकों पर बल दिया है। राजदूतों की नियुक्ति के समय दिए जाने वाले विदेशों में उसके रहन-सहन के तरीके, अग्रत्व तथा रस्म-रिवाजों पर विशेष जोर दिया जाता था। उन निर्देशों में इस बात की भी चर्चा होती थी कि उसे किससे संपर्क बनाना है और किससे सम्पर्क नहीं बनाना। 1772 में जब फ्रांस के राजदूत को लंदन भेजा गया तो यह विशेष रूप से बताया गया कि वहाँ विरोधी दल से संपर्क स्थापित करना गलत नहीं माना जाता, इसलिए उसे विरोधी दल से भी संपर्क स्थापित करना चाहिए।

5. दूतावास के कर्मचारी (Employees of Embassy)-फ्रांस का राजदूत दूतावास के सभी कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता था और उन्हें वेतन देता था। राजदूत के सचिव तथा सहचारी उसके परिवार के सदस्य होते थे। वे प्रायः अपने काम में पूर्ण कुशल नहीं होते थे। फिर भी राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से उन पर पर्याप्त धन खर्च किया जाता था। राजदूत के साथ अनेक सहयोगी, सेवक और संगीतकार होते थे। वह अपने साथ घर का सामान आदि भी ले जाता था। राजदूत स्वागतकर्ता राज्य में अपने खर्च से किराए के मकान में रहता था। उस समय आवागमन के साधन ठीक न होने के कारण राजदूत की नियुक्ति अधिक सम्मानजनक नहीं मानी जाती थी।

6. आर्थिक हितों की अभिवृद्धि (Increase in Economic Interests)-फ्रांस के राजदूत का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह माना जाता था कि वह अपने देश के व्यापार और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि करे। कुछ वस्तुओं का व्यापार इतना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था कि उनसे संबंधित प्रदेशों को भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति विदेशमंत्री की बजाय वित्त एवं व्यापार मंत्री द्वारा होती थी।

7. राजदूतों का स्वागत (Reception of Ambassadors)-17वीं शताब्दी में यह रिवाज नहीं था कि राजदूत के भेजने से पहले विदेशी सरकार से अनुमति ली जाए। प्रायः किसी को भी राजदूत बनाकर भेज दिया जाता था। 1685 में जब सर विलियम ट्रम्बल (Sir William Trumble) को ब्रिटिश राजदूत बनाकर फ्रांस भेजा गया तो लुई 14वें को यह बात अच्छी नहीं लगी क्योंकि उसके राजदूतों और विदेशी शासकों के बारे में अपनी पसंद और नापसंद थी। उस पसंद अथवा नापसंद के अनुसार ही विदेशी राजदूतों का स्वागत-समारोह किया जाता था। स्वागत-समारोह का कार्यक्रम पर्याप्त विस्तृत रखा जाता था। राजा से उनकी भेंट कभी-कभार ही हो पाती थी। राजदरबार में उनको विशेष स्थान नहीं दिया जाता था।

8. गोपनीय विचार-विमर्श (Secret Consultations)-लुई चौदहवां ने सम्मेलन राजनय के स्थान पर विशेषज्ञों के बीच होने वाली गुप्त वार्ता को प्राथमिकता दी। उसका मत था कि निजी विचार-विमर्श के समय जो रियातें दी जा सकती हैं वे अनेक पर्यवेक्षकों की उपस्थिति में नहीं दी जा सकती। लुई चौदहवें के विचार में यदि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का संचालन कुछ व्यावसायिक विशेषज्ञों के हाथों में सौंप दिया जाए तो अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं ऐसे ही हल हो जाएंगी।

9. फ्रेकोलिस डी कैलियर्स के विचार (Views of Fracolis de Calliers)- कैलियर्स का जन्म 1645 में हुआ था। वह लुई चौदहवें के जनरल का बेटा था। उसने अनेक राजनयिक महत्त्व के पदों पर काम किया था। संचि वार्ता की कला के बारे में उसके विचारों का वर्णन निम्न है-

(i) कैलियर्स का विचार था कि राजनय का उद्देश्य धोखा देना नहीं है। राजनय तो विश्वास पर आधारित होता है। छल-कपट, झूठ तथा धोखे से राजनय में विश्वास पैदा नहीं होता बल्कि राजनय की बदनामी होती है। साँघ वार्ता करने वाले को हमेशा ईमानदारी तथा सत्यता का व्यवहार करना चाहिए।

(ii) कैलियर्स के मत में सही संघि वह होती है जिसमें संबंधित पक्षों के वास्तविक हितों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाए।

(iii) कैलियर्स ने राजनय के गुणों की चर्चा करते हुए कहा है कि एक अच्छे राजनय में सही निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए। उसमें पर्याप्त आत्म-नियंत्रण होना चाहिए और उस साधन-संपन्न, एक अच्छा स्रोत, नेक, शीघ्र कार्य करने वाला और सहमत होने योग्य होना चाहिए। राजनय को धैर्यवान तथा साहसी होना चाहिए।

(iv) कैलियर्स ने राजदूतों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है-राजदूत, दूत, आवासी तथा कमिसार्स।

(v) कैलियर्स का मत था कि संप्रभु को व्यावसायिक राजनयिक सेवा के लिए भर्ती तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। युवकों को उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

(vi) कैलियर्स ने राजदूतों के कार्यों और दायित्वों का उल्लेख करते हुए कहा है कि एक राजदूत को अपने देश की सरकार का विश्वासपात्र होना चाहिए तभी उसका परामर्श मान्य हो सकता है। दूसरे उसे स्वागतकर्ता देश का विश्वास पात्र होना चाहिए। तीसरे राजदूत को स्वागतकर्ता देश की स्थानीय परिस्थितियों की आलोचना न करके प्रशंसा करनी चाहिए ताकि वहाँ के लोगों में आत्मीयता की भावना विकसित हो सके। चौथे, राजदूत का किसी षड्यंत्र या गुप्त कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहिए। पांचवें राजदूत को स्वागतकर्ता राज्य में स्थित अन्य राज्यों के राजदूतों से भी संपर्क स्थापित करने चाहिए ताकि वे भी अपने-अपने देश के लिए उसके जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

(vii) कैलियर्स के विचारानुसार सामान्यतः राजदूत को अपने राज्य की सरकार के सभी आदेशों का पालन करना चाहिए, परन्तु उसे ईश्वर अथवा न्यास के नियमों के विरुद्ध किसी आदेश का पालन नहीं करना चाहिए।

स्पष्ट है कि फ्रांसीसी राजनय के पीछे एक लम्बी परंपरा है। फ्रांस के राजनयिकों ने कलुषित, कपटपूर्ण तथा धोखाधड़ी की नीति का परित्याग किया और उत्तम आदर्शों का निर्वाह किया। भविष्य के राजनयज्ञों को उन्होंने मार्गदर्शन किया। फ्रांस के प्रसिद्ध राजनयज्ञ कैलियर्स का कहना था, "स्वस्व राजनयं विश्वास एवं निष्ठा उत्पन्न करने की क्रिया पर आधारित होता है जिसको सच्चाई एवं सद्भावना के द्वारा ही मूर्त रूप दिया जा सकता है।" उसने राजनय में बेईमानी, झूठ, प्रपंच एवं कपटपूर्ण व्यवहार की कटु आलोचना की और उन्हें केवल क्षणिक सफलता दिलाने वाला बताया। जो राजनयिक विदेश में विरोध पक्ष में प्रतिरोध, अपमान तथा घृणा को प्रोत्साहन देता है उसकी कलई शीघ्र उतर जाती है और स्थायी सम्मान प्राप्त नहीं होता।

फ्रांस ने राजनयिक आचार की भाषा को भी सुधारा। 18वीं शताब्दी से ही फ्रांसीसी भाषा का राजनयिक सम्वादों तथा अभिलेखों में प्रयोग किया जाने लगा। 1815 की वियना कांग्रेस तथा 1856 में पेरिस सम्मेलन में समस्त कार्यवाही फ्रेंच भाषा में ही हुई। यह रिवाज 1918-19 के शांति सम्मेलन तक चला। इसके पश्चात् ही अंग्रेजी भाषा में कार्यवाही होने लगी।

भारत का राजनय (Diplomacy of India)

भारत में राजनय का प्रयोग अति प्राचीन काल से चलता आ रहा है। प्राचीन भारत में राजा व्यापार, सम्मेलन और सूचना लाने, ले जाने के लिए दूतों का उपयोग करते थे। दूत उस समय राजा को युद्ध और संधियों की सहायता से अपने प्रभाव की वृद्धि करने में सहायता देते थे। प्राचीन भारतीय राजनयिक विचारों का केन्द्र बिन्दु राजा होता था, अतः प्रायः सभी राजनीतिक विचारकों-मनु, अश्वघोष, कौटिल्य, भीष्म, बृहस्पति आदि ने राजाओं के कर्तव्यों का वर्णन किया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि, "नीति कुशल राज्य को उन सभी तरीकों का प्रयोग करना चाहिए, जिनसे शत्रु, मित्र, उदासीन राज्य अधिक बलवान न होने पाएं।" राजनय को समझौता, वार्ता, दबाव तथा युद्ध की धमकी जैसे तत्त्वों के साथ राजा में राजनयिक कुशलता के गुणों का होना आवश्यक है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, कामन्दक नीति, शुक्र नीति सार, आदि में राजनय से संबंधित उपलब्ध विशेष विवरण आज के राजनीतिक संदर्भ में भी उपयोगी है। प्राचीन भारत में विभिन्न धर्म ग्रंथों में राजनय से संबंधित उपलब्ध विवरण का उल्लेख निम्न किया जाता है-

मनुस्मृति- मनुस्मृति में राजदूतों तथा उनके कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। मनु राजदूत को बहुत ही महत्त्व देता था। मनु उस व्यक्ति के लिए राजदूत की नियुक्ति पर बल देता है जो सब शास्त्रों का विद्वान् हो, अच्छे व्यक्तित्व वाला हो, जो दूसरों के मुख पर आए भावों को पढ़ सके और सत्यवादी हो, गुणी तथा उच्च वंश का हो। मनु के अनुसार, "राजा को राजदूत नियुक्त कर देना चाहिए, सेना को सेनापति पर आश्रित रहना चाहिए, प्रजा पर नियंत्रण सेना पर निर्भर करता है, राज्य की सरकार राज्य पर शांति और युद्ध राजदूत पर।" मनु राजा को युद्ध के प्रयोग का परामर्श, युद्ध की अनिवार्यता तथा विजय की सुनिश्चितता की स्थिति में एक अंतिम शस्त्र के रूप में ही देता है। मनु का मौलिक सिद्धान्त षाड्गुण्य मंत्र है, जिसमें वह राजा को संधि, विग्रह, यान, आसन द्वैधी भाव और संश्रय गुणों को ग्रहण करने का परामर्श देता है। राजदूत को अपने गुप्तचरों के माध्यम से अपना ज्ञानवर्धन करना चाहिए और विरोधी पक्ष के लोभी व्यक्तियों तथा अधिकारियों को भ्रष्ट करने का निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

याज्ञवल्क्य- याज्ञववल्क्य स्मृति में राज्य एवं प्रजा की रक्षा, राजा का एक अनिवार्य कर्तव्य माना गया है। युद्ध करना राजा का धर्म है। यदि राजा दूसरे राज्य को जीत ले तो उसे परदेश के आचार-विचार की भांति ही व्यवहार करना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के गुण संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और दूधी भाव बताये गये हैं।

रामायण- महर्षि वाल्मिकि द्वारा रचित रामायण में रावण के दरबार में जब हनुमान लाये गये तो रावण ने उसे वध करने की आज्ञा दी पर विभीषण ने रावण को समझाया कि राजदूत का वध अनुचित है। इसे दण्ड देना है तो और कोई दण्ड दिया जाये। इसी प्रकार जब राम का विशेष संदेश लेकर अंगद लंका में पहुँचा तो रावण ने बड़े आदर से अपने दरबार में उपस्थित करने की आज्ञा दी। अंगद ने संधि का प्रस्ताव रखा परन्तु रावण ने संधि की शर्तें इतनी कठोर रखीं कि वे मानने योग्य नहीं थीं। दोनों में जो वार्ता हुई वह बड़ी गर्म थी पर अंगद को हानि पहुँचाने का रावण ने प्रयल नहीं किया। विभीषण को अपने पक्ष में करना तथा रावण के दरबार की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर लेना, कुशल राजनयिक योग्यता का परिचायक है। शुक राक्षस द्वारा राम की सेना का भेद पता लगाने के लिए आने पर उसे पकड़ लिया गया, परन्तु राम ने उसे छोड़ दिया क्योंकि शुक ने अपने को

रावण का दूत घोषित कर दिया था। इससे सिद्ध होता है कि रामायण काल में भी राजनयिक आचार काफी उन्नत अवस्था में था। अयोध्या काण्ड में राजा दशरथ राम को परामर्श देते हैं कि राजा को दूतों के माध्यम से सत्य का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

महाभारत- रामायण की भांति महाभारत भी नीतिशास्त्र की ऐसी पुस्तक थी जिसका अध्ययन कर राजा स्वयं के तथा राज्य के हितों की रक्षा के लिए कार्य कर सकता था। गीता का उपदेश राजनीति के उच्चतम आदर्श के रूप में देखे जाते हैं। महाभारत में दूतों का वर्णन मिलता है। शासन की सफलता के लिए दूतों और गुप्तचरों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। दूत केवल वही व्यक्ति नियुक्त हो सकता था जो कुलीन वंश का, प्रिय वचन कहने वाला और अच्छी स्मृति वाला हो। भगवान श्रीकृष्ण एक राजदूत के रूप में भी विख्यात थे। जब पाण्डवों ने अपने वनवास के 13 वर्ष काट लिए और पुनः अपना आधा राज्य दुर्योधन से माँगा तो वह युद्ध के लिए तैयारी करने लगा। युद्ध की तैयारी पूर्ण होने तक उसने पाण्डवों को उलझाने के लिए संजय को राजदूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजा। संजय ने पांडवों से यही आग्रह किया कि वे युद्ध के लिए तैयार न हों। युद्ध में दोनों पक्षों का विनाश हो जायेगा पर जब महाराज युधिष्ठिर ने अपना हक मांगा तो संजय कोई संतोषजनक उत्तर ना दे सका। उसकी शांति वार्ता भंग हो गई। पांडवों की ओर से श्रीकृष्ण स्वयं राजदूत बनकर कौरवों के दरबार में गये ताकि दोनों पक्षों में समझौता कराया जा सके, किंतु वे युद्ध को टालने में असफल रहें। धर्मराज युधिष्ठिर एवं अर्जुन को दिये गये नीति प्रवचन, कृष्ण के योग्य एवं आदर्श राजदूत होने के द्योतक हैं। भीष्म पितामह द्वारा अंतिम क्षणों में दिये गये वचन, राजा तथा राजनय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। महाभारत में उच्च साध्य की प्राप्ति में सभी प्रकार के साधनों के उपयोग का समर्थन है।

मौर्यकाल-मौर्यकाल भारतीय राजनय का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस काल में दूतों को भेजने की प्रथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का एक भाग बन चुकी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मैगस्थनीज और समुद्र गुप्त के दरबार से सिंहल राजा के दूत आये थे। इसी प्रकार भारत की ओर से चीन और रोम के दूत्त भेजे गये थे। सम्राट अशोक ने लंका, मिस्र, सीरिया, मैसीडोन आदि देशों से संबंध स्थापित किये थे और अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को धर्मदूत के रूप में लंका भेजा था। मौर्य काल में राजदूतों के आदान-प्रदान की व्यवस्था पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी।

कौटिल्य- प्राचीन भारत में अन्तर्राष्ट्रीय राजनय की यह एक मुख्य मान्यता थी कि आक्रमण करने के लिए यथा साध्य युद्ध का सहारा नहीं लेना चाहिए। जब साम, दाम, दण्ड आदि नीति के सभी रूप असफल हो जाएं तो अंतिम उपाय के रूप में विवश होकर युद्ध को अपनाना चाहिए। प्राचीन भारत में वार्ता, दबाव, समझौता और युद्ध की धमकी राजनय के मुख्य तत्त्व थे। कौटिल्य प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध राजनयज्ञ था। उसने मौर्यकाल में अपना अर्थशास्त्र लिखा। यह पुस्तक आज भी राजनयिक सिद्धान्तों तथा आचार की प्रसिद्ध पुस्तक मानी जाती है। साम, दाम, दण्ड एवं भेद भाग भी राजनय के आधार माने जाते हैं। कौटिल्य ने यह बताया है कि नीति को उसकी सफलता या असफलता के आधार पर अच्छा या बुरा आंका जाता है। कौटिल्य ने **राज्य की नीति के 6 अंग ब**ताए हैं- शांति, युद्ध, तटस्थता, युद्ध तत्परता, संधि तथा शत्रुओं में फूट। कौटिल्य दुर्बल राष्ट्रों के शांति, विकास तथा झगड़ों से दूर रहने की नीति अपनाने का उपदेश देता है। कौटिल्य के मत में युद्ध घोषित हो जाने के बाद भी खुले संघर्ष की अपेक्षा राजनयिक प्रयासों से ही यदि विजय प्राप्त हो जाए तो अच्छा है। कौटिल्य राज्य को जहाँ तक संभव हो सके शांति का मार्ग अपनाने का परामर्श देता है। उसके अनुसार, "जब शांति और युद्ध से समान लाभ की आशा हो तो शांति की नीति अधिक लाभप्रद होगी, क्योंकि युद्ध में सदैव शक्ति तथा धन का अपव्यय होता है। इस प्रकार जब तटस्थ और युद्ध से समान लाभ हो, तटस्य नीति ही अधिक लाभप्रद व संतोषप्रद होगी।"

कौटिल्य की तटस्थता की मान्यता विश्व राजनीति के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण देन है। कौटिल्य के राजनय में उपायों के माध्यम से षाड्गुण्य की क्रियान्विति भी अपना महत्त्व रखती है। उपायों में माया तथा इन्द्रजाल को राजनयिक व्यवहार का निम्न तत्त्व माना गया है तथा उसे अन्तर्राज्य नैतिकता तथा राजनय के सिद्धान्तों में स्थान नहीं दिया गया है। कौटिल्य ने प्रथम बार भारत को व्यवस्थित और स्थापित राजनय के नियमों की भेंट की। निश्चय ही प्राचीन भारत, राजनयिक व्यवस्था में परिपक्व था। इनके द्वारा दिये गये नियम, साधारण परिवर्तन के पश्चात् आज भी लागू किये जा रहे हैं, यद्यपि इनका निर्माण आज से हजारों वर्ष पूर्व किया गया था। कौटिल्य वर्तमान यथार्थवादियों का संस्थापक था। उसने राज्य के सम्बन्ध में राष्ट्रों के मध्य शक्ति संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया था।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र में विदेश नीति को राज्य की सुरक्षा और अस्तित्व के लिए आवश्यक मानता है। कौटिल्य ने राज्य सुरक्षा

के लिए अर्थशास्त्र के अनेक अधिकरणों में व्यापक वर्णन किया है। अर्थशास्त्र का छठा अधिकरण मण्डलयोनि, सातथां अधिकरण षाड्गुण्य, दशम अधिकरण सांग्रामिक और इसके अतिरिक्त अनेक अधिकरण राजा को उस कूटनीति के बारे में और युद्ध कौशल के बारे में तथा अन्तर्राज्य संबंधों के बारे में बताते हैं जो उसे अपनाना चाहिए।

बन्धोपाध्याय ने कौटिल्य के अन्तर्राज्य संबंधी विचारों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि, "वर्तमान समय में, जबकि अधिक राजनीतिक संतुलन स्थापित है और छोटे राज्यों के अस्तित्व के अधिकार को मान्यता दी गई है, कोई भी राज्य बिना मित्र के नहीं रह सकता। एक राज्य के सुरक्षित और वैभवशाली अस्तित्व के लिए मित्र आवश्यक है। वर्तमान समय में भी राजनीतिक अलगाव का अर्थ अंत है।"

कौटिल्य के अन्तर्राज्य संबंधों को समझने के लिए उसके मंडल सिद्धांत, षाडूगुण्य सिद्धांत, बल और सेना तथा दूत एवं गुप्तचर के संबंध में विचारों को समझना चाहिए।

(अ) मंडल सिद्धांत- इस सिद्धान्त में कौटिल्य ने राजा तथा उन राजाओं का वर्णन किया है जिनसे राजा का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संबंध होता है। कौटिल्य का मत है कि किसी भी राजा के परिप्रेक्ष्य में ग्यारह प्रकार के राजा हो सकते हैं। इस प्रकार से राजाओं के कुल बारह प्रकार होते हैं। प्रत्येक राजा को बारह राजाओं के इस राजमंडल की जानकारी होनी चाहिए।

1. विजिगीषु जो राजा धर्म, अर्थ और काम के साधनों से पूर्ण हों। वह विजिगीषु कहलाता है। कौटिल्य राजमंडल का केन्द्रीय राजा विजिगीषु है। कौटिल्य इस विजिगीषु को ही ध्यान में रखकर कहता है कि उसे अन्य राजाओं के प्रकृति के आधार पर उनकी पहचान करनी चाहिए और उनकी प्रकृति के अनुरूप ही उनसे व्यवहार करना चाहिए।

2. शत्रु-विजिगीषु को शत्रु की पहचान करने में कदापि भूल नहीं करनी चाहिए। व्यसनी और दुर्बल शत्रु को नष्ट करने में विजिगीषु को कभी समय नहीं लगाना चाहिए।

3. मित्र-विजिगीषु के सामने शत्रु के साथ मित्र भी होते हैं जो विजिगीषु की सहायता करते हैं।

4. अरिमित्र-यह राजा के शत्रु का मित्र होता है और विजिगीषु को इसका ध्यान रखना चाहिए।

5. मित्र-मित्र-यह राजा के मित्र का मित्र होता है।

6. अरिमित्र-मित्र-यह राजा के शत्रु के मित्र का मित्र होता है।

7. पाष्र्णिग्रह-यह राजा विजिगीषु के सामने की अपेक्षा दूर का अथवा पीठ का शत्रु होता है।

8. आक्रन्द-यह राजा विजिगीषु का दूर से अथवा पीठ का शुभ-चिन्तक होता है।

9. पाणिग्राहमार-यह राजा के पीठ के पीछे के शत्रु का मित्र होता है।

10. आक्रन्दासार-यह वह राजा होता है जो विजिगीषु के पीठ के मित्र का मित्र होता है।

11. मध्यम-विजिगीषु और शत्रु के बीच में यह राजा समान रूप से युद्ध और संधि का समर्थन करता है। 12. उदासीन-यह राजा उस स्थिति में जो प्रायः उत्पन्न नहीं होती उसमें भी विजिगीषु, शत्रु और मध्यम के संघर्ष और संधि का समर्थन करता है।

इस प्रकार से मण्डल सिद्धान्त के द्वारा राजा अपने संबंधों का निर्धारण अन्य राज्यों से कर सकता है।

(ब) षाड्गुण्य सिद्धांत- कौटिल्य ने षाड्गुष्य सिद्धान्त में शांतिकालीन तथा युद्धकालीन स्थितियों में अपनाये जाने वाले व्यवहारों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसके अन्तर्गत कौटिल्य ने यह वर्णन किया है कि इन व्यवहारों के साथ राज्य को किन-किन नीतियों का पालन करना चाहिए। कौटिल्य ने षाड्गुण्य के अन्तर्गत 6 सिद्धान्तों का वर्णन किया है। संधि, विग्रह, यान, आसन और द्वेषी भाव। इन गुणों की परिभाषा निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1. संधि- किसी भी राज्य से कोई संबंध स्थापित करने को संधि कहते हैं। संघि विदेश नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। कौटिल्य ने इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। कौटिल्य का विचार है कि राजा को संधि का प्रयोग करके अधिक से अधिक मित्र बनाने चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मित्रों का है। कौटिल्य ने विदेश नीति एवं राजनय के उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो आज भी खरे उतरते हैं।

2. विग्रह- किसी राज्य के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने को विग्रह कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार विदेश नीति का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व विग्रह है। कौटिल्य का कथन है कि यदि शत्रु बलवान है तो उसके साथ संधि और यदि शत्रु कमजोर है तो उसके साथ विग्रह (अर्थात् उस पर आक्रमण) कर देना चाहिए।

3. यान- शत्रु के राज्य पर आक्रमण करने की दशा को यान कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार राजा को 'यान' का प्रयोग करते समय अपनी स्थिति का पूर्ण रूप से अवलोकन कर लेना चाहिए कि वह इस स्थिति में है अथवा नहीं।

4. संश्रय- किसी दूसरे शक्तिशाली राज्य की शरण लेने को संश्रय कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार संश्रय का युद्ध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संश्रय के दो अर्थ होते हैं- प्रथम, तो यह कि राजा अपने शत्रु के शत्रु और शत्रु देश के भेदियों को आश्रय प्रदान करे तथा दूसरा यह है कि वह स्वयं किसी शक्तिशाली राजा के आश्रय की मांग करे। शत्रु के सैनिकों तथा मंत्रियों में फूट डालकर उन्हें अपने पक्ष में करने की कोशिश करे।

5. आसन- कौटिल्य ने इसको तटस्थता नीति अपनाने को कहा है। आसन का अर्थ यह है कि यदि राजा यह समझे कि शक्ति संचय के लिए विश्राम की आवश्यकता है तो वह युद्ध को रोक दे।

6. द्वेषीय भाव- परिस्थितिवश जब एक राज्य के साथ संधि की जाये और दूसरे के साथ लड़ाई तो इस नीति को द्वेषीभाव कहते हैं।

(स) युद्ध एवं आक्रमण- कौटिल्य विजिगीषु को सर्वप्रथम यह बताता है कि उसे मंडल सिद्धान्त के आधार पर अपनी और शत्रु की प्रकृति मंडल में विजिगीषु सहित मित्र, मित्र-मित्र, आक्रन्द, आक्रन्दसार आदि को तथा शत्रु राजा के प्रकृति मंडल में अरिमित्र, अरिमित्र-मित्र, पाष्र्णिग्रह, पाणिग्राहमार आदि को शामिल करता है। विजिगीषु को उस समय युद्ध की घोषणा और युद्ध करना चाहिए, जब उसका प्रकृति मंडल संगठित हो। इसके साथ शत्रु के प्रकृति मंडल में विभाजन हो तथा वे व्यसनों में युक्त हो।

सिद्धांतों की समीक्षा (Examination of Theories)— कौटिल्य ने किसी राज्य की विदेश नीति के लिए उपयुक्त सिद्धान्तों का विवरण दिया है। इन नीतियों के आधार पर राजा को विदेश नीति का निर्धारण करना चाहिए। समय पर जैसी परिस्थिति हो उसी सिद्धान्त का प्रयोग करने को कहा है। कौटिल्य ने आगे कहा है कि यद्यपि विजिगीषु राजा के लिए युद्ध उपयोगी है तथापि राजा को चाहिए कि यदि संधि और विग्रह के समान लाभ हैं तो युद्ध नहीं करना चाहिए और संधि का सिद्धान्त ही उपयुक्त है। कौटिल्य ने आगे कहा है कि युद्ध ही को आवश्यक मानकर नहीं चलना चाहिए क्योंकि यह राजा की योग्यता पर निर्भर करता है, जैसे बलिष्ठ राजा से संघि उचित है, निर्बल राजा के साथ विग्रह की संघि ठीक है। इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य की विदेश नीति के लिए इन सिद्धांतों का वर्णन किया है जिससे राज्य का विदेशी क्षेत्र में अच्छा मान रह सकता है।

शक्ति-संतुलन का सिद्धांत (Theory of Balance of Power)— प्रसिद्ध भारतीय विचारक के. अन्टेकर के मतानुसार प्राचीन भारत में शक्ति संतुलन का सिद्धान्त प्रचलित था। विविध राज्य आपस में मंडल बनाकर शक्ति संतुलन बनाए रखते थे। कौटिल्य के अनुसार सीमावर्ती राज्य को शत्रु मानना चाहिए। कौटिल्य की यह बात आज भी खरी उतरती है। उदाहरणार्थ, आज पाकिस्तान तथा चीन दोनों ही भारत के सीमावर्ती देश हैं तथा दोनों ही दुश्मन हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कौटिल्य की सिद्धान्त की आज भी प्रासंगिकता है। राजा की स्थिति (Position of the King)-कौटिल्य ने अपने ग्रंथ में विजिगीषु को अन्तर्राज्य संबंधों में कूटनीति की जानकारी प्रदान की है। कौटिल्य सेना और गुप्तचरों के प्रकार और उपयोगिता का भी वर्णन करता है। कौटिल्य ने प्रथम बार भारत को व्यवस्थित तथा स्थापित नियमों की भेंट की। निश्चय ही प्राचीन भारत, राजनयिक व्यवस्था में परिपक्व था। इसके द्वारा दिये गये नियम, साधारण परिवर्तन के साथ आज भी लागू किये जा सकते हैं। कौटिल्य ने

राज्य के संबंधों को राष्ट्रों के मध्य शक्ति संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया था। कौटिल्य का उद्देश्य सुदृढ़ और शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना था। कौटिल्य का कृतित्व सिकन्दर महान् के आक्रमण से उत्पन्न अराजक स्थिति से प्रभावित था, इसलिए उसने राजा की स्थिति की सुदृढ़ता, राज्य की आंतरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा तथा राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न साधनों तथा युक्तियों के प्रयोग का परामर्श दिया। वह शासन की संपूर्ण शक्ति राजा में केन्द्रित करना चाहता था, अतः उसके विचार का मूल केन्द्र बिन्दु राजा ही था। कौटिल्य ने राजा को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। उसकी यह मान्यता थी कि राजा के गुण और दोषों पर ही राज्य की उन्नति और पतन निर्भर है। राजा को शत्रु एवं मित्र देश की पहचान करके योग्य राजदूतों की नियुक्ति करनी चाहिए। कौटिल्य राजा को उन कार्यों की भी जानकारी देता है जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में शत्रु एवं मित्र देश के प्रति करने चाहिए। कौटिल्य के राजनय का उद्देश्य विजिगीषु राज्य को विजय प्राप्त कराने तथा उसे स्थायी बनाने में सहायता देना भी था। कौटिल्य द्वारा राजनय के उपयोग के सात तत्त्व थे, स्वामी, आमात्य, जनपद, कोष, दण्ड और मित्र। उसका, जोकि एक सशक्त भारत के निर्माण का इच्छुक था, चन्द्रगुप्त मौर्य की भांति यह विश्वास था कि ऐसा चतुर्थ उपायों साम, दाम, भेद और दण्ड द्वारा ही संभव है। क्योंकि हर राज्य की व्यवस्था और समस्याएँ अलग होती हैं अतः राज्य अपनी पृथक् स्थितियों के अनुरूप निर्दिष्ट चतुर्विधाओं में से एकाधिक का उपयोग कर सकता है। कौटिल्य के अनुसार विदेश नीति का मूल उद्देश्य राजा द्वारा सर्वोच्च शक्ति प्राप्त कर अपने शत्रु को उससे वंचित करना होता है। राजा को ऐसी नीति अपनानी चाहिए जिससे उसके स्वयं के हित का संवर्धन तथा शत्रु को हानि हो।

नैतिकता और राजनीति (Morality and Politics)— धर्म और राजनीति के संबंध में कौटिल्य के विचारों को दो श्रेणियों में बांटा जाता है-प्रथम श्रेणी में वो विचारक आते हैं जिनका यह मानना है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आधार वेद है और कौटिल्य ने धर्म के सिद्धांतों का प्रयोग राजनीति में किया है। दूसरी श्रेणी में वे विचारक आते हैं जिनको यह स्वीकार करना है कि कौटिल्य का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है। कौटिल्य ने शासन में नैतिकता को स्थापित करने का प्रयत्न किया है। एम.वी. कृष्णाराव का मत है कि "धर्म के प्रति कौटिल्य का दृष्टिकोण उदासीन नहीं अपितु धर्मनिरपेक्ष वा। जैसा कि सेन का कथन है कि कौटिल्य अपनी राजनीति अनैतिक नहीं अपितु नैतिकता के प्रति उदासीन है; अपनी राजनीति में यह अधार्मिक नहीं अपितु धर्म के प्रति उदासीन है और धार्मिक भावनाओं एवं धार्मिक संस्थाओं का प्रयोग राजनीतिक कुशलता और राज्य के महान् उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तैयार है।"

अर्थशास्त्र काउद्देश्य धर्म की स्थापना नहीं था अपितु इसका उद्देश्य तो शासन कला के सिद्धान्तों की स्थापना करना था। राज्य का उद्देश्य अपने आपको सुरक्षित रखना और विकास करना था। कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग किया है लेकिन जहाँ भी उसे राज्य की सुरक्षा तथा धर्म के मध्य किसी एक का चुनाव करना पड़ा, वहीं उसने धर्म के स्थान पर राज्य की सुरक्षा को महत्त्व प्रदान किया है। यू.एन. घोषाल का कथन है कि, "हम अनुभव करते हैं कि कुछ मामलों में कौटिल्य शासन कला के नैतिक सिद्धांतों को लागू करने के संदर्भ में अपने पूर्ववती आचायों से विरोधी मत रखता है। लेखक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी शासन कला के क्षेत्र की अनैतिकता को स्वीकार करता है और इस राजपद तथा राजा के हित के नाम पर औचित्यपूर्ण मानता है।" कौटिल्य ने शासन कला को धर्म की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

राजदूत (Ambassador)-मनु, कामन्दक, कौटिल्य, चण्डेश्वर आदि सभी विद्वानों ने दूतों की योग्यता, प्रकार, कर्तव्य, आचार आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। प्राचीन भारत में राज्यों के पारस्परिक संबंधों, शांतिकालीन अथवा युद्ध का मूल आधार दूत होता था। कौटिल्य दूत को "राजा का मुख" मानता था। इसी के माध्यम से राज्यों के मध्य पारस्परिक वार्ता-विनिमय चलता था। राजदूत का मूल कार्य दो राज्यों के मध्य शांतिपूर्ण संबंधों को बनाये रखना था। शांतिकाल में दूत का कर्तव्य है कि वह अपने राजा के संदेश को मूल रूप में पर-राजा के समक्ष रखे। कौटिल्य के अनुसार दूत को समय और परिस्थिति के अनुसार कार्य करना चाहिए, जैसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य दूतों और जनपदों से मित्रता, शत्रु पक्ष में विभेद, चापलूसी अथवा घूस आदि सभी साधनों का प्रयोग करना चाहिए।" पर-राज्य में अपने राजा के सम्मान "कुल का गौरव, उसके ऐश्वर्य, त्याग, सम्पन्नता, सौष्ठव, सज्जनता, शत्रु को सन्तापित करने की क्षमता आदि को सामर्थ्य तथा शत्रु की दुर्बलताओं, उनके सैनिक ठिकानों, सैनिक योग्यताओं, दुगों, सुरक्षा व्यवस्था आदि का विस्तार से वर्णन कर, अपने देश की व्यवस्था से तुलना कर अपने स्वामी को योग्य परामर्श देते रहना चाहिए। कौटिल्य संकटकालीन स्थिति में दूत से अपेक्षा करता है कि उसे पर-राज्य के असंतुष्ट वर्ग को अपनी ओर मिलाने का निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिए। यदि उसके शांतिकालीन सभी प्रयास असफल रहें और शत्रु राजा आक्रमण की तैयारी में लग जाये तो अंतिम शस्त्र के रूप में जनता को राजा के विरुद्ध भड़का कर राज्य में फूट,

मतभेद और क्रांति करवाने | का प्रयत्न करना चाहिए। दूत को पर-राज्य के जल तथा थल मार्गों एवं दुर्गों आदि की शक्ति से भी अवगत रहना चाहिए। सेनाओं के ठहरने योग्य भूमि, रास्तों का ज्ञान, दुर्ग और शस्त्रों आदि की सूचना अपने राजा के पास निरंतर भेजते रहना चाहिए जिससे कि इस सूचना का संकट काल में उपयोग किया जा सके। इन सब कार्यों को करने के लिए कौटिल्य गुप्तचरों के उपयोग का परामर्श देता है। कौटिल्य के अनुसार दूत को पर-राज्य में पूर्ण वैभव से रहना चाहिए, क्योंकि वह विदेश में स्वदेश के वैभव तथा गौरव का प्रतिनिधित्व करता है। कौटिल्य दूत के लिए निषेधाज्ञायें भी देता है। उदाहरण के लिए दूत को पर-राज्य में आतिथ्य की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रसन्नता व्यक्त करने अपने बल का प्रदर्शन करने, अनिष्ट बोलने और मद्यपान करने से बचना चाहिए। दूत के महत्त्व और उसकी उपयोगिता को देखते हुए सभी विद्वान् इस मत के थे कि उसे कुछ विशेष अधिकार दिये जायें। दूत का कार्य पर-राज्य में अपने शासक का प्रत्येक सुखद एवं कटु संदेश पहुँचाना होता था। अप्रिय संदेश से उत्तेजित होकर राजा अधिकतर दूत के वध की आज्ञा देते थे। अतः कालांतर में चलकर प्राचीन भारतीय राजशास्त्रियों ने दूत के अबध्यता के सिद्धान्त का निर्माण किया। राजदूत को उसके जीवन और व्यक्तित्व को किसी भी हानि से उन्मुक्त माना गया था। गुप्तचर विभाग-कौटिल्य ने गुप्तचरी व्यवस्था को निपुण बनाकर उसे राज्य व्यवस्था का एक अभिन्न भाग बना दिया था। उसने आंतरिक और बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में गुप्तचरों का उपयोग प्रस्तावित किया था। कौटिल्य ने बताया है कि गुप्तचरों को कापटिक, व्यापारी, भिक्षु आदि के रूप में विदेशों में रहकर सूचनायें प्राप्त करनी चाहिए। गुप्तचर कूटनीतिक अधिकारी के नियंत्रण में रहते थे और अपनी गतिविधियों के लिए उसी के प्रति उत्तरदायी थे। गूढ़ पुरुष का मुख्य कार्य शत्रु प्रदेश से महत्त्वपूर्ण सूचना एकत्रित करना तथा उसे अपने देश की सरकार के पास भेजना था। दूत को हवा की तरह तीव्र और सूर्य की तरह शक्तिशाली होना था। कौटिल्य ने गुप्तचरों के जो 9 भेद किए हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में कूटनीति का क्या प्रभाव था। अन्तर्राज्यीय संबंधों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था, यहाँ तक कि बल सेना एवं जल सेना भी इनकी जाँच से बाहर नहीं रहती थी। सेना की विभिन्न विभागों एवं अधिकारियों के प्रत्येक कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि रखी जाती थी।

गुप्तचर विभाग को कौटिल्य अत्यावश्यक संस्था मानते हैं। कौटिल्य गुप्तचर विभाग की श्रेष्ठता और महत्ता बताते हुए लिखते हैं, "राज्य कर्मचारियों तथा प्रजा की शुद्धता जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करे। घन तथा सम्मान द्वारा इन्हें सदैव संतुष्ट रखे।" कौटिल्य ने गुप्तचर संस्थाओं के निम्नलिखित भेद बताए हैं-

1. कापटिक- ये गुप्तचर बड़े कुशल होते हैं और बहुत ही शीघ्रता से भेद का पता लगा लेते हैं। इनकी वेशभूषा विद्यार्थियों जैसी होती है। यह जनता के बीच घूम-घूमकर षड्यंत्रों का पता लगाते हैं।

2. गृहपतिक — ये गृहस्थ गुप्तचर होते हैं। ये राज्य से गुप्त आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं, तथा कृषकों के मध्य रहकर कृषकों को राजा के अनुकूल बनाते हैं।

3. वैदेहिक- ये गुप्तचर वृत्तिहीन वैश्य होते हैं। इनका कार्य व्यापारियों के मध्य रहकर सूचनायें एकत्र करना है।

4. उदास्थित- ये गुप्तचर संन्यासी वेश में रहते हैं। नगरों के बाहर इनके मठ होते हैं। ये साधुओं और किसानों पर नजर रखते हैं।

5. तापस- ये गुप्तचर जटाधारी या मुंडक होते हैं। ये कापटिकों के साथ घूमते हैं। कापटिक इन साधुओं का घूम-घूमकर प्रचार करते हैं तथा लोगों को हानि-लाभ दिखाकर अनेक भेदों को जनता से ज्ञात कर राजा को सूचित करते हैं।

6. संत्री- ये गुप्तचर ज्योतिषियों के वेश में रहते हैं तथा लोगों को आकर्षित कर राजा के प्रति स्वामिभक्ति का प्रचार करते हैं।

7. भिक्षुकी- ये गुप्तचर राज-कर्मचारियों के घरों में घुसकर या विधवा ब्राह्मणियों के अन्तःपुर में घुसकर स्त्रियों से अनेक भेदों की जानकारी प्राप्त करते हैं।

8. तीक्षण- ये गुप्तचर बड़े साहसी और वीर होते हैं। धन के लोभ में ये शेर, हाथी, रीछ आदि से लड़ने को तैयार हो जाते हैं। जनता में ये बड़े लोकप्रिय होते हैं।

9. रतद- ये गुप्तचर बड़े निर्मोही तथा क्रूर होते हैं। राजा के कहने से ये किसी भी व्यक्ति को निःसंकोच विष पिलाकर मार

डालते हैं।

कौटिल्य का मत था कि राजा को केवल एक ही गुप्तचर द्वारा दी गई सूचना पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। जब कम-से-कम तीन गुप्तचरों से एक ही सूचना प्राप्त हो या अन्य किसी प्रकार से समाचार की पुष्टि हो तो राजा को उस पर विश्वास करना उचित रहेगा। निष्कर्ष रूप से कौटिल्य पक्का भौतिकवादी था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह नैतिकता के त्याग को सही समझता था। वह नैतिकता और धर्म को उद्देश्य प्राप्ति में सहायक मानता था। उसका अंतिम उद्देश्य राष्ट्रीय हित था। उन अराजक परिस्थितियों में, जिसमें उसने अर्थशास्त्र के माध्यम से राजा को परामर्श दिया कि शांति, सुरक्षा, स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता की रक्षा बल शक्ति और युक्ति से ही संभव थी। राजनयिक नियमों के निर्माण में उसके समक्ष एकमात्र उद्देश्य हित तथा राजतंत्र को सशक्त बनाना था। अंत में कहा जा सकता है कि कौटिल्य वह प्रथम विचारक था जिसने राजनय का सांगोपांग विवेचन और विश्लेषण किया।

कामन्दकीय नीतिसार- कामन्द के नीति सार में कौटिल्य की प्रशंसा प्रमाणित करती है कि उसके विचार कौटिल्य से प्रभावित थे। कामन्दक के नीति सार में राजा की शिक्षा, राज्य के विभिन्न अंगों, युद्ध कला, राज्य की सुरक्षा और अन्तर्राज्यीय संबंधों आदि का विवरण है। कामन्दक ने षाड्गुण सिद्धान्त और साम, दाम, भेद और दण्ड आदि उपायों के प्रयोग का परामर्श दिया है। कामन्दक दूतों की नियुक्ति से अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कार्य करने की राजा को सलाह देता है। कामन्दक ने दूत के पद को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार यह एक विशेष गुप्तचर होता है। वे उसे प्रकाशचर का नाम देते हैं। कामन्द के अनुसार दूत में ये सभी गुण और योग्यताएँ होनी चाहिए जो कि सामान्यतः गुप्तचरों के लिए आवश्यक होती है। उनके अतिरिक्त दूत में कुछ अन्य भी विशेष योग्यताएँ होती हैं। सामान्य गुप्तचर के रूप में एक गुप्तचर को तर्क-शक्ति, मनोविज्ञान, स्मरण शक्ति, मृदु-भाषण, शीघ्र पराक्रमशीलता, क्लेष सहने की सामर्थ्य, परिश्रमशीलता, चातुर्य, परिस्थिति के अनुसार निर्णय लेने की शक्ति आदि गुणों से संपन्न होना चाहिए। वह दूत को राजा की आँखें मानता है। इसीलिए कामन्दक दूतों से रहित राजा को अँधे मनुष्य के समान मानता है।

कामन्दक ने गुप्तचरों को भी महत्त्वपूर्ण माना है। वे गुप्तचरों को दूर तक पहुँचने वाला राजा का चक्षु कहते हैं। राजा जब सो जाता है तो भी उसके ये चक्षु दूर और समीप की सारी घटनाओं को देखते रहते हैं। गुप्तचर को हर प्रकार के लोगों से वास्ता रखना होता है और प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति में से निकलना होता है, इसलिए उसे मीठा बोलने वाला और शीघ्र पराक्रमशाली होना चाहिए।

भारतीय राजनय के साधन (The Means of Indian Diplomacy)-भारत के प्राचीन ग्रंथों में राजनय के साधनों का विवेचन किया गया है। वे इनको उपाय की संज्ञा देते हैं। इन उपायों के उचित प्रयोग से राजा को सिद्धि प्राप्त होती है। अधिकांश विचारकों ने इन उपायों की संख्या चार मानी है। ये हैं-साम, दाम, भेद और दण्ड। इन्हें नीतिशास्त्र में 'चतुर्पद' कहा गया है। राजनय के इन उपायों का वर्णन निम्नलिखित है—

1. साम - साम का अर्थ मित्रता तथा अनुभव है। राजनय के इस नियम के अन्तर्गत विपक्षी राजा को वाणी चातुर्व तथा राजनयिक कुशलता अर्थात् तर्क और विनम्रता से मित्र बनाये रखा जाता था। विजिगीषु राजा को इस नीति का पालन करना चाहिए। साम उपाय को अपनाने वाले राज्य द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा के संबंध में कामन्दक ने लिखा है कि "जिस वाणी से दूसरे को उद्वेग न हो वह सामवाणी कहलाती है। यह सरल, सत्य एवं प्रिय होती है।" राजाओं को जहाँ तक संभव हो सके इस उपाय का अनुसरण करना चाहिए।

2. दाम- यदि साम की नीति सफल हो जाए परन्तु फिर भी उसका पूर्ण परिणाम नहीं निकले तो कौटिल्य दाम की नीति के पालन का परामर्श देते हैं। दाम को दान भी कहा जाता है। दान का अर्थ है देना। दाम सिद्धान्त के अन्तर्गत शत्रुपक्ष को अपनी ओर मिलाने के लिए लोभ और लालच देना होता है। राजनय में कुछ दिये बगैर प्राप्त नहीं होता है। अतः यदि राज्य को कुछ प्राप्त करना है तो उसे कुछ देना भी पड़ेगा। यही समझौते का आधार है।

3. भेद- साम और दाम अर्थात् अनुनय और समझौते में असफल रहने पर भेद अथवा फूट डालने का प्रयत्न किया जा सकता है। इसके द्वारा एक राज्य अपने विरोधियों में फूट डालकर उनकी शक्ति को कमजोर बनाता है। कौटिल्य के अनुसार भेद डालने

के कार्य के अन्तर्गत पड़ोसी राज्यों को उत्तेजित करना अथवा प्रतिष्ठित नागरिकों और अधिकारियों को विद्रोह के लिए प्रेरित करना है।

कामन्दक के अनुसार भेद उपाय तीन प्रकार का है-

(i) शत्रु के स्नेहियों एवं समर्थकों में फूट उत्पन्न करना;

(ii) शत्रु के मंत्री, सेनाध्यक्ष एवं अन्य उच्च अधिकारियों तथा समर्थकों में परस्पर धृष्टतापूर्ण व्यवहार को बढ़ावा देना ताकि उनके बीच भेद उत्पन्न हो जाए; तथा

(iii) धमकियाँ देकर शत्रु एवं उसके सहायकों के दिलों में भय उत्पन्न करना।

कामन्दक ने आगे इस बात का भी उल्लेख किया है कि ये नीतियां किन व्यक्तियों पर अपनाई जाएं। उसके मतानुसार, चार प्रकार के पुरुष भेद योग्य होते हैं-

(iv) वे जिनको उनकी दी गई वस्तु का मूल्य नहीं मिला है;

(v) वे जो लोभी, मानी तथा तिरस्कृत हैं;

(vi) वे जो किसी कारणवश नाराज या क्रोधित हैं; तथा

(vii) वे जो यह कहते हैं कि तुम्हारे कारण मेरा काम बिगड़ गया। ऐसे पुरुषों पर भेद का प्रयोग शत्रु को अपंग कर देता है।

4. दण्ड- राजनय के उक्त तीनों साधनों का आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार प्रयोग किया जा सकता है। इन तीनों उपायों की असफलता के पश्चात् ही चौधे उपाय अर्थात् दंड का उपयोग करना चाहिए। मनु भी यथासंभव अंतिम अस्त्र के रूप में ही उसके प्रयोग की छूट देता है। मनु के अनुसार साम, दाम और भेद इनमें से एक अथवा तीनों के साथ प्रयोग द्वारा शत्रु पर विजय प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, युद्ध से नहीं। इन तीनों उपायों के द्वारा जब सिद्धि प्राप्त न हो तब दंड का आश्रय लेना उचित होगा। कौटिल्य के अनुसार जो राजा दुर्बल हो उसे समझा-बुझाकर और कुछ देकर अपने अनुकूल कर लेना चाहिए तथा जो राजा सबल हो उसको दण्ड उपायों से वश में करना चाहिए। मनु के अनुसार, "जिस प्रकार कृषक धान्यों की रक्षा हेतु निराई करता है, उसी प्रकार राजा को धर्म-विरुद्ध आचरण करने वालों का दण्ड द्वारा दमन करना चाहिए।" सभी युगों में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दण्ड की व्यवस्था रही है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल से ही साम, दाम, भेद और दण्ड का प्रयोग चला आ रहा है। आधुनिक युग इसका अपवाद नहीं है।

मनु, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, कामन्दक, शुक्र आदि राजशास्त्रियों ने विस्तार से राजा, मंत्री, सभा, परिषद्, अन्तर्राज्य संबंधों, सेना, दूत, दुर्ग आदि का वर्णन किया है। इनके द्वारा दिये गये परामर्श का निष्ठापूर्वक पालन किसी भी राजा को सशक्त बनाने में सहायक हो सकता है। राजनय के संबंध में जो नियम आधुनिक काल में वियना कांग्रेस द्वारा स्वीकृत किये गये हैं वे भारत में हजारों वर्ष पूर्व ही विकसित हो चुके थे। राजनय पर लिखने वाला कौटिल्य इस काल का प्रथम तथा प्रमुख विद्वान् था। भारतीय विद्वान् भांगले के अनुसार, "निश्चयपूर्वक यह कहना संभव है कि जो यह (अर्थशास्त्र) कहता है, वह विश्व राजनीति के संदर्भ में आज भी अधिकांशतः संभव है।" भारत में राजनयिक विचार केवल सैद्धांतिक साहित्य में परिमित रहकर ही पाठकों का मनोरंजन नहीं करते रहे, वरन् उनका व्यावहारिक राजनीति पर भी प्रभाव रहा है। कौटिल्य ने राजनय द्वारा ही चन्द्रगुप्त को भारत का चक्रवर्ती सम्राट बनाया।

6. पुराना तथा नया राजनय [OLD AND NEW DIPLOMACY]

पुरानी कूटनीति को परिभाषित करें तथा इसके गुणों व दोषों का वर्णन करें। (Define the old diplomacy and discuss its merits and demerits.)

अथवा

नवीन राजनय से आपका क्या अभिप्राय है? प्राचीन राजनय के पतन के कारण बताइए ।

(What do you understand by New Diplomacy? What are the reasons for the decline of Old Diplomacy?)

अथवा

नया राजनय क्या है? यह पुराने राजनय से किस प्रकार भिन्न है? नये राजनय का स्वरूप पुराना राजनय से किस तरह बना, वर्णन करें।

(What is New Diplomacy? How does it differ from Old Diplomacy? Explain the reasons for the transformation of Old Diplomacy into New Diplomacy.)

अथवा

नई कूटनीति एवं पुरानी कूटनीति में क्या अंतर है? वर्णन करें। (Explain differences between New Diplomacy and Old Diplomacy.)

अथवा

नवीन राजनय की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। यह प्राचीन राजनय से किस प्रकार भिन्न है? (Describe the distinctive features of new diplomacy. How does it differ from old diplomacy?)

उत्तर- कुछ विद्वानों ने राजनय को दो भागों में बाँटा है- एक पुराना राजनय (1500-1914) तथा दूसरा नया राजनय (1914 से अब तक)। इन विद्वानों के मतानुसार राजनय की मूल धारा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु बीसवीं शताब्दी की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अनेक महत्त्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के कारण राजनय के स्वरूप तथा क्षेत्र में भारी परिवर्तन हुए।

पुराना राजनय (Old Diplomacy)

जिस प्रकृति का राजनय 1500 से 1914 तक जारी रहा, उसे पुराने राजनय का नाम दिया गया है। इसका फ्रांसीसी राजनय के रूप में प्रादुर्भाव हुआ जिसे तीन शताब्दियों के दौरान सभी यूरोपीय राष्ट्रों ने अपना लिया था। निकल्सन के अनुसार, पुराना राजनय बड़ा शिष्ट, गौरवमयी तथा सुसभ्य राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों के संचालन के लिए अपनाया जाने वाला बेहतरीन माना जाने वाला राजनय था।"

के. एम. पनिक्कर के मतानुसार, "पुराना राजनय, पूर्ण मानवीय तथा विनम्र कत्ला थी, जो पारस्परिक सहिष्णुता के आधार पर बड़ी सुन्दरता के साय संचालित होती थी।"

पुराने राजनय का आरम्भ (Beginning of Old Diplomacy)- राजनय को निकलसन ने काफी पुराना बताया है। के. एम. पन्निकर के अनुसार, राजनय तथा राजनायिकों का अस्तित्व तब से ही विद्यमान है जब से सुसंगठित राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु आधुनिक विद्वान् 1500 ई. से पूर्व राजनय का कोई सामान्य रूप न होने के कारण, इसको 1500 ई. से प्रारम्भ हुआ मानते हैं। अन्य शब्दों में राजनय का इतिहास केवल 500 वर्ष पुराना ही है। इन 500 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तनों के साथ

-साथ राजनय में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। विद्वानों ने इन 500 वर्षों को दो भागों में विभाजित किया है-1500 से 1914 तक का काल पुरातन राजनय के अन्तर्गत और 1914 से वर्तमान तक का काल नवीन राजनय के अन्तर्गत आता है।

पुराना राजनय की विशेषताएँ (Features of Old Diplomacy)

प्रो. निकसलन ने पुराना राजनय की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. यूरोपीयन राजनय- पुराना राजनय मुख्यतः यूरोप तक ही सीमित था। 19वीं शताब्दी तक राजनय का क्षेत्र यूरोपीय राज्यों तक सीमित रहा। उसका प्रचार अन्य महाद्वीपों में नहीं हुआ था। साम्राज्यीय महाद्वीप होने के कारण, जो अफ्रीका तथा एशिया के लोगों को नियन्त्रित करता था, यूरोप सभी अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाकलापों का केन्द्र था। टॉयनवी के अनुसार, "1919 तक सोलह राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेते थे, इनमें से पन्द्रह राष्ट्र यूरोप के देशों के आपसी सम्बन्धों का संचालन यही करता था। एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और 1900 तक संयुक्त राज्य अमेरिका का भी राजनयिक दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं था।

2. सीमित —क्योंकि पुराना राजनय यूरोप तक ही सीमित था, इसका क्षेत्र भी सीमित था। और यह यूरोप की महान् शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण राज्यों तक ही सीमित था। एशिया और अफ्रीका की छोटी शक्तियों के साथ सम्बन्धों का मामला यूरोपीय शक्तियों के बीच सम्बन्धों में निहित माना जाता था। पुराना राजनय शक्तिशाली यूरोपीय शक्तियों के हितों के लिए ही था।

3. महाशक्तियों और छोटी शक्तियों में भेद- पुराने राजनय के अनुसार यह माना जाता था कि महाशक्तियों के हित तथा दायित्व व्यापक होते हैं। उनके पास अधिक सैनिक एवं आर्थिक शक्ति होती है। इस कारण वे छोटे राज्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लघु राज्यों का महत्त्व केवल महाशक्तियों के सहायक के रूप में ही था। छोटे राज्यों का महत्त्व उनके सैनिक साधनों, युद्धस्थिति, बाजार मूल्यों और कच्चे माल के स्रोतों के आधार पर निश्चित किया जाता था। पुराने राजनय के समय छोटी शक्तियों के हित, मत तथा समर्थन महाशक्तियों के फैसलों को कदाचित्त ही बदल पाते थे।

4. महाशक्तियों का दायित्व- छोटे राज्यों के मध्य शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व महाशक्तियों का ही था। इस काल में बड़ी शक्तियों का यह उत्तरदायित्त्व था कि छोटी शक्तियों के आचरण का निरीक्षण करें और उसमें शान्ति स्थापित करें। छोटी शक्तियों के बीच संघर्ष होने पर बड़ी शक्तियाँ हस्तक्षेप करती थीं। इस संघर्ष को बड़ी शक्तियों का संघर्ष बनने से रोकने का प्रयत्न किया जाता था।

5. कुलीनात्मक- पुराने राजनय में विदेशी सम्बन्धों का संचालन शासकों, राजाओं तथा उनके विश्वासपात्र राजदूतों का विशेषाधिकार था। शासक और राजा समस्त राजनीति का केन्द्र-बिन्दु होते थे। राजदूत राजाओं द्वारा चुने जाते थे और वह राजाओं के प्रति ही उत्तरदायी होते थे। कूटनीति, कूटनीतिज्ञों के विशेष वर्ग द्वारा ही संचालित होती थी तथा अभिजात तन्त्र, सामन्तशाही तथा वर्ग-चैतन्य इसके विशेष गुण थे।

6. गुणों पर विशेष बल- के. एम. पाणिक्कर के अनुसार, "पुराना राजनय मित्रता, मानवीय तथा विनम्र कला या जो कि सहिष्णुता के आधार पर संचालित होता था।" पुरानी राजनीति विशिष्ट वर्गीय थी इसलिए विभिन्न सुपरिभाषित तथा मानवीय सिद्धान्तों का कूटनीतिज्ञ गुण अथवा आधारभूत सिद्धान्त माना जाता था। ईमानदारी, एकता, सच्चाई, नम्रता, न्याय तथा न्यायाचार का कठोर पालन, गोपनीयता तथा राष्ट्रीय हितों के प्रति पूर्ण निष्ठा, कूटनीतिज्ञ के आवश्यक गुण माने जाते थे। कड़ी से कड़ी कार्यवाही भी बड़े आदर तथा सरल शब्दों द्वारा व्यक्त की जाती थी।

7. व्यावसायिक राजनयिक सेवा- पुरातन राजनय की एक अन्य विशेषता यह थी कि प्रत्येक यूरोपीय देश में बहुत कुछ एक जैसी व्यावसायिक राजनयिक सेवा स्थापित की गई थी। ये राजनय अधिकारी विदेशी राजधानियों में अपने देश का प्रतिनिधित्व करते थे। इनकी शिक्षा, अनुभव तथा लक्ष्यों से पर्याप्त समानता रहती थी। इनका एक विशेष वर्ग बन जाता था। उनकी सरकार का लक्ष्य चाहे कुछ भी हो किन्तु वे राजनय का उद्देश्य शान्ति की रक्षा मानते थे। सन्धि-वार्ताओं में ये व्यावसायिक राजनय काफी लाभकारी सिद्ध हुये।

8. निरन्तर एवं गोपनीय संधिवार्ता- पुराने राजनय की एक अन्य विशेषता यह थी कि हाल में संधि-वार्ताओं में निरन्तरता तथा

गोपनीयता को मान्यता दी जाती थी। वार्ताओं के मध्य दूसरों के दृष्टिकोण का ध्यान रखा जाता था। इस समय का राजनय ऊपरी दिखावे और शानोशौकत से प्रभावित था। गोपनीयता और झूठ के बावजूद कुछ मान्य सिद्धान्त थे जिन पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अपनी मंद गति से निरंतर चलते रहते थे। राजदूत के अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह नहीं होते थे व साधारणतः बेकार के झगड़ों में कभी नहीं होने देता था तथापि झगड़ों के होने के बाद उन्हें शान्ति से निपटाने का प्रयास करता था।

9. राजदूतों के लिए कार्य करने की स्वतन्त्रता- स्वीकार की गयी नीति की सीमाओं में कूटनीतिक समझौता वार्ताएँ करने वाले कूटनीतिज्ञ को कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। संचार के साधनों के गतिशील न होने के कारण राजदूतों को विशाल शक्तियों दे देना राज्यों के लिए आवश्यक था। पुराना राजनय, तब शुरू हुआ था जब कि सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए आने-जाने के साधन कम विकसित थे। राजदूतों के साथ निरन्तर सम्बन्ध बनाए रखने के लिए राज्य के शासकों के लिए आवश्यक था कि वे राजदूतों को कार्य करने की स्वतन्त्रता दें।

नये राजनय के प्रादुर्भाव के कारण (Reasons from Emergence of New Diplomacy)

पुराने राजनय के हास तथा नये राजनय के उदय के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी रहे-

1. अन्तरर्राष्ट्रीयवाद का उदय- विश्व के राज्यों में सामान्य संकट का मुकाबला करने के लिए एकता की भावनाएँ विकसित होती हैं। 1945 के बाद के काल में राष्ट्रों के मध्य समुदाय चेतना की भावना का आरम्भ हुआ और इसके साथ-साथ संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधीन विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का उदय भी हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा एवं विकास की नई चेतना अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की नई प्रवृत्तियों के सकारात्मक विकास का साधन बनी। विदेशी मामलों के विश्वस्तरीय सम्मिश्रण वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं बहुपक्षीयवाद में बढ़ोतरी आदि ने राजनय को नया आयाम दिया।

2. लोकतान्त्रिक प्रक्रिया की लोकप्रियता — जनमत की भावना के विकास के साथ-साथ जनमत ने देशों की विदेश नीतियों को प्रभावित करना प्रारम्भ किया। राजनय पर जनमत का प्रभाव बढ़ने लगा। निकल्सन का कहना है कि "नये राजनय तथा पुराने राजनय के संक्रमण काल में जनमत एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहा है।" नए उभरे राज्यों का अपने अस्तित्व से प्रेम तथा दूसरे राज्यों के साथ प्रभुत्ता की समानता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिए शक्ति का साधन बना। बहुत से राष्ट्रों में लोकतांत्रिक सरकार, राजनीतिक दलों के बढ़ते हुए महत्त्व, विभिन्न राष्ट्रों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में जनमत तथा दबाव गुटों की सक्रिय उपस्थिति के कारण, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया विरोध-समाधान की एक लोकप्रिय प्रक्रिया बन गई। आन्तरिक राजनीति में जनमत तथा दलों की बड़ी हुई भूमिका के कारण नीति-निर्माण तथा संचालन में भी लोकतान्त्रिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के प्रभाव अधीन राजनय में लोकतान्त्रिक विधियों और उत्तरदायित्व की भावना का विकास हुआ। उत्तरदायित्व की यह भावना न केवल सरकार के प्रति बल्कि लोगों तथा जनमत के प्रति भी दृढ़ हुई।

3. यातायात के साधनों में सुधार -विज्ञान का प्रभुत्व 19वीं शताब्दी में ही बढ़ चुका था। यातायात के साधनों में काफी सुधार हो चुका था। संचार साधन भी विकास की ओर उन्मुक्त थे। यातायात के द्रुतगामी साधनों के विकास ने राजनय को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। **हैराल्ड निकल्सन** के कथनानुसार, भाप की शक्ति से चलने वाला इंजन, तार, वायुयान तथा टेलीफोन ने पुराने राजनय के आधार को बदलने में काफी सहयोग दिया।" पहले यातायात तथा संचार के आधुनिक साधन न होने के कारण राजनयज्ञों को अपनी बुद्धि के अनुसार ही निर्णय लेने होते थे और प्रत्येक कार्य के लिए वह उत्तरदायी होते थे। वर्तमान परिस्थितियों में वे आवश्यकता के समय अपनी सरकार से शीघ्र सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। वर्तमान काल में राजदूतों की योग्यता और कुशलता का पुराने समय जैसा महत्त्व नहीं है। राष्ट्रों के मध्य रेडियो, टेलीफोन, टेलीग्राफ और डाक सम्पर्क में बहुत अधिक वृद्धि हो गई है जिससे प्रत्येक राष्ट्रों के नेताओं के लिए एक-दूसरे के साथ घनिष्ट सम्बन्ध बनाए रखना सम्भव हो गया है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में परिवर्तन- दो विश्वयुद्धों के प्रभावाधीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में तेजी से तथा बड़े-बड़े परिवर्तन और उपनिवेशों की समाप्ति की प्रक्रिया तथा नए राष्ट्रों का उदय, पुराने राजनय की समाप्ति और नए राजनय के प्रादुर्भाव का कारण बनी। एशिया और अफ्रीका के देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तथा वे अपने आपको अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच का एक अभिनेता मानने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व विश्व रंगमंच पर न तो उनकी कोई स्थिति थी और न ही उनकी कोई भूमिका। प्रथम विश्वयुद्ध के

बाद स्थिति में परिवर्तन आया तथा अनेक एशियाई देश राष्ट्रसंघ के सदस्य बन गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया के अनेक देशों को स्वतन्त्रता प्राप्ति हो गई। ये संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बन गए तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इनकी आवाज का महत्त्व बढ़ गया।

5. पुराने शक्ति-सन्तुलन का अन्त -नये राजनय के उदय का अन्य कारण पुराने शक्ति-सन्तुलन का नष्ट होना था। शक्ति-सन्तुलन में परिवर्तन आने के कारण राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ। हिटलर और उसके सहयोगियों की हार के बाद संसार स्पष्ट रूप से दो सैद्धान्तिक गुटों में विभाजित हो गया। पूर्वी एशिया में साम्यवादी चीन का उदय हुआ। इन नये परिवर्तनों से पूरे विश्व के राजनय का स्वरूप बदलना भी स्वाभाविक था।

6. अमेरिका तथा सोवियत संघ का दो महाशक्तियों के रूप में उदय- दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका तथा भूतपूर्व सोवियत संघ दोनों महाशक्तियों के रूप में उभरकर हमारे सामने आए और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मुख्य कलाकार बन गए। पुराने राजनय से उनकी अनभिज्ञता तथा शीतयुद्ध के प्रादुर्भाव और सन्धियों तथा प्रति-परम्परावादी सन्धियों के कारण संगठन उनके तथा दूसरे राष्ट्रों के लिए पुराने राजनय को व्यवहार में रखना कठिन हो गया।

7. गुप्त अभिलेख का प्रकाश्न — सोवियत संघ में होने वाली महान् क्रान्ति के बाद लेनिन तथा उसके सहयोगियों न रूसी राज्य-अभिलेखागारों के गुप्त अभिलेखों को प्रकाशित किया। इससे अनेक देशों ने जारशाही रूस के साथ जो सन्धियों की थीं वह जनता के सामने प्रस्तुत हो गईं। अतः गुप्त सन्धियों के प्रति विभिन्न देशों की सरकार और जनता चौकन्नी भी रहने लगी।

8. राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों का बढ़ा हुआ क्षेत्र- युद्धोत्तर काल में राजनय का क्षेत्र बहुत विशाल हो गया क्योंकि इस काल में लोगों और राष्ट्रों के बीच सम्पर्क साधनों में बहुत वृद्धि हुई तथा अब अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी फैल गए। सम्बन्धों के क्षेत्र में यह वृद्धि कूटनीतिक क्रियाकलापों का एक बड़ा साधन बनी। राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों के साथ-साथ शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों के विकास की आवश्यकता ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में संसदीय तथा बहुपक्षीय राजनय को जन्म दिया।

नये राजनय की विशेषताएँ (Characteristics of New Diplomacy)

श्री के. एम. पन्निकर ने नए राजनय की पाँच मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. शासकों और जनता से अपील-नये राजनय की एक विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत एक देश अपनी बात को समझाने के लिए अन्य देश के शासकों से ही नहीं बल्कि वहाँ की जनता से भी अपील करता है।

2. विभिन्न तरीकों से सरकारों के विरुद्ध दोषारोपण-नये राजनय की दूसरी विशेषता यह है कि विरोधीराज्य की सरकार को बदनाम करने के लिए उसके लक्ष्यों को तोड़-मरोड़ कर रखा जाता है। झूठे आरोपों द्वारा सरकार के विरुद्ध दोषारोपण किया जाता है।

3. अस्त्र-शस्त्रों पर धन खर्च करना-प्रत्येक राज्य अपने विरोधी पक्ष को आतंकित करने की दृष्टि से अस्त्र-शस्त्रों पर बहुत-सा घन खर्च करता है तथा हड़तालों, सम्मेलनों और आन्दोलनों का आयोजन करता है।

4. केवल अधिकारी स्तर पर राजनय सम्बन्ध अपने राज्य की जनता का विरोधी राज्य की जनता से सम्पर्क तोड़ दिया जाता है। केवल अधिकारी स्तर पर ही राजनयिक सम्बन्ध कायम रखे जाते हैं।

5. राज्यों के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क को रोकने का प्रयास विरोधी राज्यों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्कों को कम-से-कम कर दिया जाता है। किसी भी समझौते के साथ आक्रमणकारी भाषा में अधिक से अधिक शर्तें लगाई जाती हैं। स्पष्ट है कि नये राजनय का स्वरूप पुराने राजनय से काफी भिन्न है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नई पद्धति का विकास हो रहा है।

पुराने और नये राजनय में अन्तर

(Difference between Old and New Diplomacy)

पुराने और नये राजनय के बीच लक्ष्य और प्रक्रिया की दृष्टि से कुछ अन्तर हैं, इनका वर्णन निम्नलिखित है-

1. पुराना राजनय मुख्यतः यूरोपीय था जबकि नया राजनय विश्वव्यापक — पुराना राजनय यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों तक ही सीमित था परन्तु नये राजनय में सभी प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र शामिल हो गए हैं। नया राजनय वास्तव में स्वरूप तथा क्षेत्र में विश्व व्यापक है। नये प्रभुत्ता सम्पन्न स्वतन्त्र राज्यों के बनने से तथा एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के उत्थान ने युद्धोत्तर काल के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को पूर्ण रूप से बदल दिया। यूरोपीय सम्बन्धों से यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, जिनमें सभी प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र शामिल हैं, में बदल गए।

2. पुराना राजनय शिष्ट या जबकि नया राजनय अशिष्ट है- श्री. के. एम. पन्निकर के मतानुसार, "पुराना राजनय मित्रतापूर्ण, मानवीय तथा विनम्न कला था जो कि सहिष्णुता के आधार पर संचालित होता था।" पुराने राजनय परिष्कृत माना जाता था। इसमें पत्र-व्यवहार की भाषा अत्यन्त शिष्ट तथा परिमार्जित होती थी। कड़ी से कड़ी कार्यवाही भी बड़े सरल तथा उदार शब्दों में व्यक्त की जाती थी। उदाहरण के लिए निकलसन के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, 'सम्राट की सरकार कड़ी कार्यवाही करने का इरादा रखती है।' 'सम्राट की सरकार इस विषय पर चिन्ता प्रकट करती है'। इन वाक्यों का अर्थ होता है कि उनकी सरकार अब मित्रता के स्थान पर शत्रुता रखने का इरादा रखती है।

3. पुराना राजनय अधिकतर द्विपक्षीय जबकि नया अधिकतर बहुपक्षीय — अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में बहुपक्षीय समझौता वार्ताओं, संयुक्त राष्ट्र पर संस्थानी कृत, राजनय तथा विभिन्न राज्यों के राजनेताओं तथा नेताओं के सीधे व्यक्तिगत सम्पर्क, सभी ने मिलकर युद्धोत्तर काल के राजनय के विषय को नई दृष्टि दी है। पुराना राजनय अधिकतर द्विपक्षीय तथा सीमित होता था, नया राजनय अधिकतर विश्वपरकीय तथा बहुपक्षीय है।

4. पुराना राजनय गुप्त या जबकि नया राजनय खुला है- पुराना राजनय गोपनीयता के पक्ष में था तथा 1945 के पहले वाले युग में गुप्त समझौता वार्ता करना तथा गुप्त समझौते या सन्धियाँ करना कूटनीतिक समझौता वार्ताओं की अमूल्य विशेषता होती थी। इसके विपरीत नये राजनय के युग में कूटनीतिक समझौता वार्ताएँ अधिकतर 'जन सम्पर्क माध्यम के द्वारा नियमित जन वाद-विवाद का केन्द्र होती हैं। नये राजनय के अधीन, समझौता वार्ताएँ खुली होती हैं तथा इनके परिणाम निश्चित रूप से किन्हीं समझौतों पर या सन्धियों की व्यवस्थाओं पर पहुँचने के तुरन्त बाद ही जन-प्रसार साधनों पर घोषित कर दिये जाते हैं। कूटनीतिक समझौता वार्ताओं का रेडियो पर, प्रेस में, टेलीविजन पर तथा जन-माध्यम के दूसरे साधनों द्वारा पूरी तरह जनता तक पहुँचा दिया जाता है।

5. पुरानी राजनय के पद्धतियों एवं तरीकों में परिवर्तन- पुराने राजनयिक सिद्धान्त अब निरर्थक हो चुके हैं। अब राज्यों की सभी राजनय सिद्धान्त भिन्न-भिन्न हो गए हैं। के. एम. पन्निकर के अनुसार, "पुराना राजनयिक सिद्धान्त आज की स्थिति में तो प्रभावकारी नहीं रहे हैं और राज्यों के बीच व्यवहार के ढंग भी बदल गए हैं। आज के युग में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में जो दो विरोधी दुनिया के बीच में हैं, पुराने तरीके लागू नहीं हो सकते हैं।"

6. पुराना राजनय कुलीनात्मक जबकि नया राजनय लोकतान्त्रिक — पुराना राजनय का स्वरूप कुलीनतन्त्रात्मक था जबकि नया राजनय लोकतान्त्रिक है। पुराने राजनय के युग में राजदूतों का एक विशिष्ट अभिजात वर्ग, जिसकी रग-रग में यह व्यवसाय भरा होता था, कूटनीति का समझौता वार्ताओं का संचालन तथा राष्ट्रों के मध्य कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया करता था परन्तु वर्तमान काल में जनमत का बढ़ता प्रभाव, राजनीतिक दल, दबाव गुट, विश्व-जनमत तथा सरकारी नौकरों से एक अधिक लोकतन्त्रात्मक तथा कम-अभिजात तन्त्रात्मक वर्ग के उदय ने राजनय को नया दृष्टिकोण तथा नए आयाम दिए हैं। आज के युग के राजदूत तथा परामर्शदाता व्यवहार तथा दृष्टिकोण से अधिक लोकतन्त्रात्मक है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इनकी कार्य-

प्रणाली में एक विशेष प्रकार की अनौपचारिकता आ गई है। जिस राष्ट्र में उनकी नियुक्ति होती है उस राज्य के लोगों में वे बिना हिचकिचाहट के शामिल हो जाते हैं।

7. पुराना राजनय सरकारों तक सीमित, नया राजनय जनता तक व्यापक — पुराने राजनय राज्य की सरकारों तक सीमित था, जनता से उसका काई वास्ता न था। जनता राज्य की नीतियों एवं सन्धियों में कोई दिलचस्पी नहीं लेती थी परन्तु नया राजनय जनता की भावनाओं से प्रभावित होता है। बड़े-बड़े राष्ट्र, रेडियो वार्ता से एक-दूसरे की जनता को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं। राज्य पारस्परिक सम्बन्ध बनाने के लिए सांस्कृतिक शिष्टमण्डल भेजते हैं जो अपने देश का गुणगान कर विदेशी जनता को प्रभावित करते हैं। जनता का जीवन अब अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों से प्रभावित होता है। प्रेस तथा सूचना विभाग राजदूतों के कार्यालय का एक अंग बन गया है।

अत: पुराने राजनय की विशेषताएँ नये राजनय की विशेषताओं से नितान्त भिन्न हैं।

7. गुप्त तथा खुला राजनय [SECRET AND OPEN DIPLOMACY]

प्रश्न — खुली कूटनीति का अर्थ बताएं तथा इसके गुणों का वर्णन करें। (Define open diplomacy and discuss its features.)

अथवा

'गुप्त' और 'प्रकट' राजनय के अन्तर को स्पष्ट कीजिए। इनके अपने-अपने गुणों की विवेचना कीजिए। (Differentiate between 'Secret' and 'Open' Diplomacy and discuss their respective merits.)

अथवा

'गुप्त' तथा 'मुक्त' राजनय की विस्तार से व्याख्या करें। (Discuss in detail Secret and Open diplomacy.)

अथवा

गुप्त राजनय को परिभाषित करें तथा इसके गुणों व दोषों का वर्णन करें। (Define the secret diplomacy and discuss its merits and demerits.)

उत्तर - गुप्त राजनय (Secret Diplomacy) - गुप्त राजनय की मुख्य परिकल्पना यह है कि विदेशी मामलों को समझने का न तो लोगों को शौक होता है तथा न ही वे इसे समझने के योग्य होते हैं तथा विदेशी मामलों में सामान्य जनता के हस्तक्षेप के कारण राजनय की कार्यप्रणाली पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। गुप्त राजनय की मान्यता है कि यदि बातचीत को गोपनीय न रखा जाए तो राजनयज्ञों के लिए समझौते के लिए अपेक्षित लचीलेपन के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती क्योंकि यदि कोई बात कहेगा तो वह अपने सम्मान के लिए उस पर अड़ा रहेगा चाहे लोकहित इसे बदलने की माँग ही क्यों न करता हो। गुप्त राजनय की मान्यता है कि इस प्रणाली से किसी राजनयज्ञ को अपने देश के हितों की रक्षा करने में सहायता मिलती है।

गुप्त राजनय की विश्व शान्ति को बनाए रखने में भूमिका (Role of Secret Diplomacy in the maintenance of world peace)- गुप्त राजनय की विश्व शान्ति को बनाए रखने में एक अहम् भूमिका है।

इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका इसके समर्थन में दिये गए तकों पर आधारित है-

1. एक सफल राजनय को गुप्त रहना अनिवार्य है।

2. गुप्त समझौतों में सौदेबाजी बड़ी आसानी से की जा सकती है। गुप्त समझौतों में राष्ट्रहित की रक्षा के लिए उपयोगी निर्णय

लिए जा सकते हैं।

3. राजनय का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हुए विश्व शान्ति को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी अदा करनी होती है। इसलिए समझौते गुप्त ही होने चाहिए ताकि विश्व शान्ति बनाए रखने के लिए कुछ त्याग भी करना पड़े तो राजनयिक हिचकिचाहट महसूस नहीं करेंगे। यदि गुप्त राजनय का आचरण न किया जाए तो राजनयज्ञों को प्रचार में रुचि लेनी होगी और वे अपने कर्तव्य मार्ग से हट जाएँगे। उनका जनता के क्षणिक दुराग्रहों से भी प्रभावित होना पड़ेगा जिसके परिणामस्वरूप संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए विश्व शांति को कुर्बान करना पड़ेगा।

4. गुप्त राजनय से खुले राजनय की समस्याओं का समाधान होगा। खुले राजनय के अन्तर्गत पत्रकारों, सांसदों और प्रमुख अधिकारियों द्वारा समय-समय पर दी जाने वाली सूचनाएँ रहस्योद्घाटन करने वाली होती हैं। वे ऐसी सूचनाएँ राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों को कटु बना देती हैं क्योंकि गुप्त राजनय में इस प्रकार का कोई भय नहीं रहता, इसलिए विश्व शान्ति बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है।

खुला राजनय (Open Diplomacy)

खुले राजनय का तात्पर्य, राजनय का जन आँकाक्षाओं से प्रभावित और संचालित होना। नैतिक तथा आदर्शात्मक आधार पर इसका समर्थन किया जाता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विशेष तौर पर प्रथम महायुद्ध के पश्चात् यह सम्भव हो सका कि उदार लोकतन्त्र के सिद्धान्तों को राजनय के संचालन के सम्बन्ध में लागू किया जा सके। लोकतन्त्र की अवधारणा का प्रचलन केवल घरेलू सरकार के रूप में ही सीमित न होकर अन्य देशों के साथ सम्बन्धों तक भी विस्तृत हो। अमरीकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के चौदह सिद्धान्तों में पहला यही था कि सभी शान्तिपूर्ण समझौते खुले रूप में किए जाने चाहिए तथा राजनय का संचालन जनतान्त्रिक तरीके से बहुमत की राय के अनुसार किये जाए। वुडरो विल्सन के अनुसार, "शान्ति के खुले समझौते होने चाहिए, जिन पर खुली बातचीत करके पहुँचा जाए और उसके बाद किसी प्रकार का कोई निजी अथवा गैर सरकारी बायदा नहीं होना चाहिए और राजनय का कार्य खुला और सार्वजनिक दृष्टि में होना चाहिए।"

राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने चौदह सिद्धान्तों की प्रस्तावना में भी यह कहा था, "यह हमारी इच्छा है तथा उद्देश्य भी हैं कि जब शान्ति की प्रक्रिया शुरू की जाए तो यह खुली हो और इसमें किसी भी प्रकार की कोई गुप्त बात का स्थान नहीं होना चाहिए।" वर्तमान लोकतन्त्र के युग में यह तर्क दिया जाता है कि लोगों का यह अधिकार तथा कर्तव्य है कि वे विदेश-नीति निर्णय-निर्माण के बारे में भी जाने तथा उनमें अपना हिस्सा डाले। प्रभुसत्ता सम्पन्न होने के कारण राजनयज्ञों समेत सरकार के सभी कर्मचारियों को उत्तरदायी बनाना लोगों का अधिकार है। इसलिए यह अनिवार्य समझा जाता है कि राजनयज्ञ लोगों की सामान्य इच्छाओं को ध्यान में रखें तथा विभिन्न समझीता वार्ताओं के स्वरूप तथा विकास के बारे में तथा इन समझौता वार्ताओं के परिणामस्वरूप होने वाले समझीतों तथा विरोधों के बारे में लोगों को अवगत करायेंगे। राजनयज्ञ लोगों के सामने उत्तरदायी होने चाहिए तथा इसके लिए आवश्यक है कि लोग यह जाने कि कूटनीतिज्ञ क्या कर रहे हैं तथा उनकी प्राप्तियों तथा असफलताएँ कौन-कौन सी हैं।

खुले राजनय की विश्व शान्ति को बनाए रखने में भूमिका (Role of Open diplomacy in the maintenance of world peace)-खुले राजनय की विश्व शान्ति को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी यह महत्त्वपूर्ण भूमिका इसके समर्थन में दिये गए तर्कों पर आधारित हैं-

1. जनता द्वारा आवश्यकता के समय धन और जीवन का बलिदान किया जाता है, इसलिए सरकार द्वारा उन्हें सभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और सन्धियों से अवगत रखना चाहिए।

2. लोकतन्त्रात्मक सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए जनता को तथ्यों से जानकारी प्राप्त होनी चाहिए।

3. यदि राजनयिक कार्यों पर जनता का संरक्षण तथा नियन्त्रण रहेगा तो राजनीतिज्ञ विनाशकारी युद्धों का वातावरण नहीं बना सकेंगे और जनता को जबरदस्ती युद्ध में नहीं झोंका जा सकेगा।

4. खुले राजनय से विश्व में शान्ति स्थापित हो जाएगी क्योंकि तब कोई भी सरकार कोई गुप्त बातचीत नहीं कर सकेगी और इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों को लोगों से छुपा नहीं सकेगी। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र से राजनय की गलतियाँ और असफलताएँ भी दूर हो जाएंगी। इससे टकराव की संभावना भी कम हो जाएगी। 5. खुले राजनय की व्यवस्था में भी महत्त्वपूर्ण विषयों पर व्यक्तिगत रूप से विचार-विमर्श किया जा सकता है और समझौते हो जाने के बाद उसे जनता की जानकारी के लिए प्रकाशित किया जा सकता है।

6. खुले राजनय में यह बात निहित है कि राजनयज्ञों द्वारा किए गए समझौतों को सार्वजनिक बनाया जाए ताकि लोग उनके पक्ष अथवा विपक्ष में अपना विचार प्रकट कर सकें।

गुप्त राजनय बनाम खुला राजनय (Secret Diplomacy Vs. Open Diplomacy)

'गुप्त राजनय बनाम खुला राजनय' का विवाद आज भी बना हुआ है। गुप्त राजनय या खुले राजनय के पक्ष में जो दलीलें दी जाती हैं उनका कुछ वजन तो अवश्य है लेकिन उनसे कुछ नहीं हो सकता। खुले राजनय के समर्थकों ने अपना सारा पक्ष केवल एक आधार पर खड़ा किया है कि राजनय पर लोकतन्त्र नियन्त्रण से शांति की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। खुला राजनय यह भी मान लेता है कि वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति की तकनीकों पर गुप्त राजनय से अधिक प्रभाव डालता है।

इसी प्रकार गुप्त राजनय के समर्थक भी कुछ दलीलें देते हैं। उनका तर्क है कि यदि वार्ताएँ गुप्त नहीं रखी जायेंगी तो राजनयज्ञों को पैंतरे और शर्तें बदलने की अधिक गुंजाइश नहीं रहेगी अर्थात् उनका जोड़-तोड़ का दायरा छोटा-सा रह जाएगा क्योंकि एक बार उनका प्रस्तुत पक्ष प्रकाशित हो जाने पर फिर से उस पर अड़े रहना पसन्द करेंगे ताकि उनकी प्रतिष्ठा को आँच न आये, चाहे जनहित की दृष्टि से उसमें परिवर्तन करना ही उचित क्यों न हो। गुप्त राजनय का सबसे बड़ा लाभ यह माना जाता है कि सार्वजनिक नियन्त्रण से मुक्त होने के कारण इसमें राजनयज्ञ को अपने देश के हितों की रक्षा के लिए काम करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। परन्तु यह दलील यह मानकर दी जाती हैं कि स्वयं जनता की अपेक्षा व्यवसाय के राजनयज्ञ सार्वजनिक हित के बारे में अच्छा निर्णय ले सकते हैं।

आज जनता जागरूक है। वह किसी भी ऐसे समझौते को स्वीकार नहीं करती जो उसे मान्य न हो। आज राजदूत कोई ऐसी रियात नहीं दे सकता जो राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली समूहों के हितों के विरुद्ध जाती हों चाहे उन रियासतों से शान्ति की स्थापना ही क्यों न होती हो। यह कठिनाई वार्ता की गोपनीयता से भी दूर नहीं हो सकती। बल्कि कभी-कभी इससे स्थिति और बिगड़ सकती है। कोई सरकार एक अलोकप्रिय नीति अथवा समझौते को तब तक क्रियान्वित नहीं कर सकती जब तक कि जनता को धीरे-धीरे विश्वास में न लिया जाए, विरोधी पक्ष से परामर्श न कर लिया जाए और दलीय समर्थकों को यह अनुभव न कराया जाए कि वे भी निर्णव लेने में सहायक हैं, केवल तभी समझौते सफल हो सकते हैं। आज जनता सक्रिय रूप से देश की आन्तरिक और बाहरी नीति के निर्माण में सहयोग देती है तथा प्रत्येक सरकार को इनके सहयोग की जरूरत पड़ती हैं। अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य इसलिए नहीं बन सका था कि राष्ट्रपति विल्सन ने अपने देश में गुप्त राजनय का सहारा लिया था और इस सम्बन्ध में लोगों को विश्वास में नहीं लिया था। इसी प्रकार अमेरिका वार्साय सन्धि में भी शामिल नहीं हो सका था क्योंकि उसने गोपनीय वार्तालाप का सहारा लिया था। इसका अनिवार्य परिणाम यह निकला कि अमेरिका की सीनेट ने राष्ट्र संघ और वार्साय सन्धि का सदस्य बनने सम्बन्धी प्रस्ताव को अनुसमर्थन प्रदान नहीं किया था कि जिस प्रकार की गोपनीयता भूतकाल में उपयुक्त थी वैसी गोपनीयता आज उपयुक्त नहीं हो सकती। उस समय गोपनीयता राजनय के लिए आवश्यक अवस्थाएँ मौजूद थी जब आम जनता राष्ट्रीय सरकार के प्रक्रम न तो हिस्सा लेती थी तथा न ही अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं अथवा समझौतों के बारे में कोई बात जानने की परवाह करती थीं। वास्तव में उन दिनों में भी गुप्त राजनय उन लोगों के लिए खुले राजनय था जिनके समर्थन की सरकार की आवश्यकता होती थी। डॉ. महेन्द्र कुमार के शब्दों में, "इस प्रकार गोपनीय राजनय और खुले राजनय के प्रश्न की जाँच उन लोगों के सन्दर्भ में करनी चाहिए जिनके समर्थन और अनुमोदन की किसी सरकार और उसकी नीतियों को आवश्यकता होती हैं।"

निष्कर्ष (Conclusion) - गुप्त राजनय तथा खुले राजनय पर ऊपर विस्तार से चर्चा करने बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सबसे अच्छा रास्ता 'मध्य रास्ता' ही हो सकता है। राज्यों के बीच समझौतों और सन्धियों के लिए अथवा राजनयिक समझौता वार्ताओं के लिए गुप्त राजनय सबसे आदर्शात्मक है। राष्ट्रीय हितों को प्रोत्साहित करने तथा उनकी सुरक्षा के लिए क्या अच्छा है, इसके बारे में लोगों को जानकारी देनी चाहिए लेकिन उसी आधार पर राजनय के बारे में सूचना को गुप्त रखना चाहिए जो कि दूसरे राष्ट्रों के साथ हमारे सम्बन्धों के लिए हानिकारक हो सकती है। पामर तथा पर्किन्स के अनुसार, "लोकतान्त्रिक प्रक्रिया लोगों के लिए सबसे अच्छी प्रक्रिया है। जनता का भला इसी में है कि समझौते के परिणामों एवं उद्देश्यों के लिए नेताओं को उत्तरदायी ठहराया जाए न कि इसमें किए समझौते ही लाखों घरों तथा शराबखानों के लिए टेलीविजनों के पर्दों पर दिखाएं जाएं।"

8. राजनयिक अभिकर्ता के प्रकार एवं कार्य

[TYPES AND FUNCTIONS OF DIPLOMATIC AGENTS]

1.राजनयिक अभिकर्ता के प्रकारों का वर्णन कीजिए। उनसे क्या कार्य निष्पादित होते हैं और किस प्रकार वे कार्य-प्रकार्य को करते हैं?

(Discuss the types of Diplomatic Agents. What functions are performed by them and how do they conduct their business?)

अथवा

विश्व शान्ति को बनाए रखने में राजनयिकों द्वारा निष्यादित विविध कार्यों की समीक्षात्मक परीक्षा कीजिए। (Examine critically the various functions performed by a Diplomat in the maintenance of world peace.)

अथवा

एक आदर्श राजनय के क्या कार्य हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए। (M.D.U. 2005, 2017, 2018) (What are the functions of on Ideal Diplomat? Discuss in detail.)

उत्तर- वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन में राजनयिक अभिकर्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनयिक अभिकर्ताओं का अर्थ ऐसे व्यक्तियों से हैं जो अपने राज्य और स्वागतकर्ता राज्य के राजनीतिक संबंधों का संचालन तय करते हैं।

राजनयिक प्रतिनिधि की परिभाषा (Definition of Diplomatic Agents)

अन्तर्राष्ट्रीय विधि में राजनयिक अभिकर्ता (Diplomatic Agents) राज्य के प्रतिनिधि या दूत होते हैं जो विदेशों में उस राज्य के प्रतिनिधि के रूप में रहते हैं जिसके द्वारा कि उन्हें भेजा गया है। विभिन्न देशों के मध्य पारस्परिक संबंधों की नींव रखने तथा अन्य देशों के साथ संबंधों में प्रगाढ़ता लाने के लिए राजनयिक प्रतिनिधि आवश्यक होते हैं। रामायण में भी अंगद राम के दूत बनकर रावण के दरबार में जाते हैं। इसी प्रकार महाभारत में युद्ध को रोकने की दृष्टि से स्वयं श्रीकृष्ण दूत बनकर कौरवों के दरबार में गए।

राजनयिक प्रतिनिधियों की परिभाषा देते हुए **लारेंस ने कहा है** कि, "विदेशी राज्य सभाओं में स्थायी रूप से रहने हेतु राजदूतों को भेजने की रीति का प्रारम्भ उपयोगिता से अधिक राजनीतिक कारणों से है।" अतः राजनयिक प्रतिनिधि वे राजदूत होते हैं जो राज्य द्वारा विदेशों में प्रतिनिधि के रूप में स्थायी निवास के लिए भेजे जाते हैं।

फेनविक (Fenvick) ने कहा है कि, "वास्तव में बात यह है कि शताब्दियों से राज्यों में विदेशों में स्थायी रूप से राजनीतिक प्रतिबन्ध रखने की प्रथा चली आ रही है जोकि अन्तरर्राष्ट्रीय परिवार में आज राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण आधार नहीं है।"

ओपनेहीम के अनुसार, "यद्यपि राजनयिकता (Diplomacy) उतनी ही पुरानी है जितना कि राज्यों में पारस्परिक सम्पर्क तयापि कर्मचारियों का विशेष वर्ग जिसे राजनयिक कहते हैं तब तक नहीं थे और हो भी नहीं सकते थे जब तक कि स्थायी दूतावास अस्तित्व में नहीं आए।"

दूतों के प्रकार एवं वर्ग

(Kinds and Classes of Diplomatic Agents)

विभिन्न सम्मेलनों और अभिसमयों द्वारा दूतों की जो मुख्य श्रेणियों स्वीकार की गई हैं, वे निम्नलिखित है

1. राजदूत (Ambassadors)- राजदूत को प्रेषक राज्य के सम्प्रभु का प्रतिनिधि माना जाता है। अपने राज्य के सम्प्रभु का प्रतिनिधि होने के कारण राजदूत को अनेक विशेषाधिकार, सम्मान एवं सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। जब वे पोप द्वारा भेजे जाते हैं, तब उन्हें पोपदूत (Papal Regates) या धर्मदूत (Papal Nuncios) कहा जाता है। राजदूत का सबसे बड़ा अधिकार यह है कि वह राज्य के अध्यक्ष से सीधा मिल सकता है और वार्ता कर सकता है। राजदूतों का अन्य अधिकार यह है कि उन्हें परम श्रेष्ठ (His Excellency) के रूप में संबोधित किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग उस समय से ही किया जाता रहा है जब ये राजदूत अपने राजा के व्यक्तिगत प्रतिनिधि हुआ करते थे। राजदूत का स्थान, पद-प्रतिष्ठा और अग्रत्व क्रम की दृष्टि से सर्वोपरि होता है। जब राजदूत उस राज्य में पहुँचते हैं, जहाँ वे भेजे जाते हैं, तब वह प्रेषक राज्य द्वारा प्रदान किए गए मुहरबन्द प्रत्यपत्र (Letter of Credence) को पेश करते हैं।

2. पूर्ण अधिकार युक्त मंत्री और असाधारण दूत (Ministers Plenipotentiary and Envoys Extraordinary)— -यह राजनयिक प्रतिनिधियों की द्वितीय श्रेणी है। यह राज्याध्यक्षों के व्यक्तिगत प्रतिनिधि नहीं होते और न ही राजदूतों की भाँति उन्हें अधिकार ही प्राप्त होते हैं। इनका स्वागत भी सार्वजनिक रूप से न कर राज्याध्यक्ष निजी तौर से करता है। इनको सौजन्य के कारण परम श्रेष्ठ कहकर संबोधित किया जा सकता है किन्तु यह उनका अधिकार नहीं है। यूरोप में अस्थायी कार्यों के लिए भेजे जाने वाले दूतों के साथ साधारण शब्द का प्रयोग किया जाता था ताकि उनमें वहाँ स्थायी रूप से बसने वाले मन्त्रियों के बीच अन्तर किया जा सके। बाद में इसके साथ पूर्ण अधिकारी शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा। इन्हें प्रेषक राज्य समस्त शक्तियों प्रदान करता है।

3. निवास मन्त्री (Minister of Residence)-यह तृतीय श्रेणी के राजदूत होते हैं। इन्हें 'His Excellency' बिल्कुल नहीं कहा जाता। यह विदेशी राज्यों के पास एक अधिकार पत्र देकर भेजे जाते हैं, यह व्यवस्था 1918 में स्थापित की गई। व्यवहार में उनमें तथा द्वितीय श्रेणी के दूतों में विशेष अन्तर नहीं है। इनका औचित्य यह था कि ग्रेट-ब्रिटेन, आस्ट्रिया, फ्रांस आदि की शक्तियों यह चाहती थीं कि उनके तथा निम्न शक्तियों के दूतों में अन्तर रहे तथा इनके दूतों का अधिक प्रतिष्ठान दी जाए। आजकल निवास मन्त्री नियुक्त करने की प्रथा कम होती जा रही है।

4. कार्य दूत (Charge D' Affairs)- इस वर्ग के दूत उपर्युक्त दूतों की भाँति राज्य के अध्यक्ष द्वारा दूसरे राज्यों के अध्यक्ष के लिए नहीं भेजे जाते बल्कि एक राज्य का विदेश मन्त्रालय दूसरे राज्य के विदेश मन्त्रालय के लिए भेजता है। परिणामस्वरूप इन दूतों को दूसरों की भाँति विशेष सम्मान, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। ये दूत अपनी नियुक्ति के प्रत्य-पत्र राज्य के अध्यक्ष को न सौंपकर विदेश मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। कार्यदूत स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से नियुक्त किए जाते हैं। लेकिन अभ्यास में ये कभी भी स्थायी रूप से नियुक्त नहीं किये जाते हैं।

5. उच्चायुक्त (High Commissioner)- ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य आपस में जिन दूतों का आदान-प्रदान करते हैं उन्हें उच्चायुक्त (High Commissioner) कहते हैं। ऐसा परम्परावश ही किया जाता है।

राजनयिक प्रतिनिधियों के कार्य (Functions of Diplomatic Agents)

राजनयिक अभिकर्ता के कार्यों का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा राज्यों की राष्ट्रीय विधियों द्वारा किया जाता है।

प्रो. ओपेनहीम (Prof. Oppenheim) तथा जी. वी. ग्लान (G. V. Glahn) ने राजदूत के कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया है-

1. वार्ता (Negotiation)- राजनयिक अभिकर्ता का कार्य अपने राज्य तथा विदेशी राष्ट्र के बीच मध्यस्थता का काम करना होता है। इन राजनयिक प्रतिनिधियों का यह कर्तव्य होता है कि जो भी बात ये विदेशी राष्ट्र से करते हैं उनकी सूचना अपने राज्य को दे तथा समय-समय पर जैसी घटनाएँ घटती हैं उनकी सूचना भी ये अपने राज्य को देते रहे हैं। इनका सदा यह प्रयास रहता है कि वे अपने राज्य तथा जिस राज्य में उनकी नियुक्ति होती है उसके साथ अच्छे संबंध बनाए रखे। राजनयिक अभिकर्ता अपने तथा दूसरे राज्य के बीच विभिन्न विषयों पर समझौता वार्ता करने वाला महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यह न केवल उस राज्य से संबंध रखता है जिसके लिए यह भेजा गया है, बल्कि अन्य राज्यों के साथ भी संधि वार्ता कर सकता है। वह अपने राज्य के अध्यक्ष और विदेश मंत्री का प्रवक्ता होता है। दूसरे राज्यों से प्रतिवेदन स्वीकार करके वह अपने राज्य को भेजता है। वे प्रेषक राज्य और ग्राही राज्य के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने के लिए प्रेषक राज्य की ओर से विभिन्न पहलुओं पर ग्राही राज्य से वार्ता करता है।

2. निरीक्षण (Observation) — जिस राज्य में राजनयिक अभिकर्ता की नियुक्ति होती है यहाँ की घटनाओं का निरीक्षण करना भी इनका मुख्य कर्तव्य होता है। विशेषकर उन घटनाओं के प्रति ये बहुत सजग रहते हैं जिनसे इनके राज्य पर प्रभाव पड़ता है। वे दूसरे राज्य की राजनीतिक परिस्थितियों का निरीक्षण करते रहते हैं और उनकी पूरी रिपोर्ट अपने राज्य को भेजते हैं। दूत की सफलता का मापदण्ड भी इसे ही माना जाता है। ऐसा करते समय उसे अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए।

3. संरक्षण (Protection)— जिस राज्य में राजनयिक अभिकर्ता की नियुक्ति होती है वहीं रहने वाले अपने देश के नागरिकों का संरक्षण करना भी एक कार्य होता है। उनका कार्य अपने देश के नागरिकों की सम्पत्ति, जीवन एवं अन्य हितों की रक्षा करना है। यदि किसी देशवासी का न्यायिक सुरक्षा प्रदान किए बिना दण्ड दिया जाता है तो राजदूत उसे संरक्षण देगा। राजनयिक अभिकर्ता द्वारा अपने देशवासियों के लिए संरक्षण प्रदान करने की कोई निश्चित सीमा कानून द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकती। यदि विदेशों में देशवासियों के सम्मान तथा हितों को चोट पहुँचती है तो राजदूत वहाँ के विदेशमंत्री से सम्पर्क करता है।

4. प्रतिनिधित्व (Representation)-राजनयिक जिस राज्य में भेजे जाते हैं, वहाँ अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। ओपनेहीम के अनुसार, "राजनयिक अभिकर्ता जिस राज्य में भेजा जाता है, यह बहाँ संसूचनाओं के संबंध में अपने गृह राज्य के प्रमुख तथा विदेशमंत्री का प्रवक्ता (Mouthpiece) होता है।"

5. मैत्रीपूर्ण संबंधों की अभिवृद्धि (Promotion of Friendly Relations)— राजनयिक अभिकर्ताओं से प्रेषक राज्य तथा ग्राही राज्य के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों में अभिवृद्धि करने की अपेक्षा की जाती है। राजनयिक अभिकर्ताओं का यह भी कार्य है कि वे दोनों राज्यों के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों को विकसित करें।

6. प्रशासन (Administration)-कूटनीतिक मिशन का अध्यक्ष उस समूह का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है। यदि मिशन का आकार बड़ा है तो सेवी वर्ग का कार्यालय भी होता है जिसमें उसके अधीनस्थ विभाग के अध्यक्ष होते हैं। राजदूत स्वयं व्यक्तिगत रूप से दूतावास के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है।

7. जन-सम्पर्क (Public Relations)-राजनयिक अभिकर्ता निरन्तर अपने राज्य और उसकी नीतियों के प्रति सद्भावना बनाए रखने के कार्य में संलग्न रहता है। इसके लिए वह जन-सम्पर्क के दूसरे कार्य सम्पन्न करता है। पार्टियों और भोजों में

सम्मिलित होता है, सार्वजनिक एवं अन्य अवसरगत भाषण देता है, विदेशी सहायता से चलने वाली परियोजना की देख-रेख करता है।

उक्त कार्यों के **अतिरिक्त राजदूतों के निम्नलिखित कार्य** भी होते हैं-

1. अपनी सरकार का दृष्टिकोण, राष्ट्रीय नीति और विचारों को दूसरे देश के सम्मुख बड़ी स्पष्टता और प्रबलता के साथ रखना है।

2. देश के प्रति असम्मान प्रदर्शित हो तो उसके प्रतिहार के लिए वहाँ के विदेशमंत्री से मिलता है।

3. वह विदेश में अपने देश को अपमानित करने वाली राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं और दशाओं की जानकारी स्वदेश भेजता है।

4. अपने देश के भगोड़े अपराधियों के प्रत्यर्पण के लिए विदेश मंत्रालय से बात करता है।

5. वह स्वदेशवासियों के लिए परिपत्र (Passport) जारी करता है।

6. राजदूत से यह अपेक्षा की जाती है कि वे जिस देश में राजदूत नियुक्त होकर गया है वहाँ की सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लेगा। उनका कार्य राजनीतिक घटनाओं और राजनीतिक दलों की गतिविधियों पर निगाह रखना तथा अपनी सरकार को इस संबंध में प्रतिवेदन देना है। वे एक पक्ष को प्रोत्साहित करने के लिए या दूसरे पक्ष को चुनौती देने के राजनीतिक जीवन में सक्रिय नहीं बन सकते।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनायिक अभिकर्ताओं के कार्य की प्रकृति बहु-आयामी है। उसे देश की 'आँख और कान' माना जाता है। विदेश नीति की सफलता उनकी सजगता, कुशलता और क्षमता पर निर्भर करती है।

9. राजनयिक उन्मुक्तियाँ एवं विशेषाधिकार [DIPLOMATIC IMMUNITIES AND PRIVILEGES]

1. राजनयिक अभिकर्ताओं की उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों की विवेचना कीजिए। (Discuss the Immunities and Privileges of Diplomatic Agents.)

अथवा

राजनयिक अभिकर्ताओं के विविध प्रकार की उन्मुक्तियों या विशेषाधिकारों का वर्णन कीजिए। (Describe the Immunities and Privileges of Diplomatic agents.)

उत्तर- राजनयिक अभिकर्ताओं की उन्मुक्तियों एवं विशेषाधिकार (Immunities and Privileges of Diplomatic Agents)- राजनयिक अभिकर्ताओं को अनेक प्रकार की उन्मुक्तियाँ और विशेषाधिकार सौंपे जाते हैं ताकि वे अपने दायित्वों को पूरा कर सकें। उन्मुक्तियों का सिद्धान्त प्राचीन समय से राज्यों के द्वारा पालन किया जा रहा है और यह सभी राज्यों के द्वारा मान्यता प्राप्त है। ये विशेषाधिकार परंपरागत एवं अभिसमयात्मक कानूनों पर आधारित हैं। प्राचीन यूनान के लोग राजदूत पर किए गये, प्रहार को गंभीर प्रकृति का मानते थे। वहाँ के विधिशास्त्री राजनयिकों पर किए गए प्रहार को अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन मानते ये।

राजनयिक उन्मुक्तियाँ तथा विशेषाधिकारों का संक्षेप में निम्न प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है-

1. राजनयिक अभिकर्ताओं की अनतिक्रमणीयता (Inviolability of Diplomatic Agents)-अन्तर्राष्ट्रीय विधि का यह एक महत्त्वपूर्ण नियम है कि राजनयिक प्रतिनिधियों को व्यक्तिगत सुरक्षा प्रदान की जाती है। व्यक्तिगत सुरक्षा के आधार पर राजनयिक अभिकर्ताओं को ऋण आदि के लिए गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यदि राजनयिक अभिकर्ता के ऊपर आक्रमण होता है तो उस देश पर आक्रमण तथा अपमान माना जाता है जिसका वह प्रतिनिधि है। इसी आधार पर उसके विरुद्ध सभी मुकदमे आदि निराकृत हो जाते हैं। वर्तमान समय में यह उन्मुक्ति वियना अभिसमय, 1961 के अनुच्छेद 29 पर आधारित है।

आजकल राजदूतों की अवध्यता के नियम उल्लंघन के कई उदाहरण सामने आए हैं। दिसम्बर 1971 के भारत-पाक युद्ध के काफी समय पूर्व से ही ढाका में भारतीय दूतावास के व्यक्तियों को नजरबंद कर दिया गया था। उसी प्रकार की ठीक वैसी ही कार्यवाही भारत को कलकत्ता में स्थित पाकिस्तान के दूतावास के खिलाफ करनी पड़ी। 4 नवम्बर, 1979 को ईरानी छात्रों द्वारा तेहरान में अमेरिका दूतावास के 52 राजनयिकों को काफी लम्बे समय तक बंदी रखकर राजनयिक उन्मुक्तियों के उल्लंघन का एक नया रिकार्ड स्थापित किया। अमेरिका दूतावास के कर्मचारियों को बंधक बनाना अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से सर्वथा अवैध कार्य था। पाकिस्तान अधिसूचना अभिकरण (Pakistani Intelligence Agencies) द्वारा अप्रैल 2000 में इस्लामाबाद में भारतीय उच्चायोग कर्मचारी अनिल खन्ना का अपहरण वियना अभिसमय का उल्लंघन था। उसकी मुक्ति के बाद उन्हें चिकित्सीय परीक्षा के लिए ले जाया गया। प्रारम्भिक रिपोर्ट ने स्पष्ट किया कि उसे मारा गया था और उसके संपूर्ण शरीर पर खरोंचे थी। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजदूतों के पद की पवित्रता कम होती जा रही है।

2. राज्य-क्षेत्र बाह्यता (Extra-Territoriality)-राजनयिक अभिकर्ता और उनके परिवार के सभी सदस्यों को स्वागतकर्ता राज्य के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाता है। उन्हें स्थानीय क्षेत्राधिकार से उन्मुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। इस सिद्धान्त के पीछे मूल मान्यता यह है कि राष्ट्रों के परिवार के सभी सदस्यों द्वारा राजदूतों का राज्य प्रदेश बाह्यता का विशेष अधिकार सौंपा जाना चाहिए। उसे स्वागत राज्य के क्षेत्राधिकार नियंत्रण एवं निर्देशन से मुक्त रखा जाना चाहिए ताकि वह अपने दायित्वों को पूरा कर सकें। राज्य क्षेत्र बाह्यता के अनुसार कूटनीतिज्ञ का स्थानीय क्षेत्राधिकार से अनेक मुक्तियों प्रदान की जाती हैं।

3. परिसर की अनतिक्रमणीयता (Inviolalility of Premises)-स्थायी राजनयिक मिशन को परिसर की आवश्यकता होती है, जहाँ से वह अपना कार्य कर सके। इसलिए स्वागतकर्ता राज्य को मिशन के लिए परिसर प्राप्त करने में प्रेषक राज्य की सहायता करनी चाहिए। मिशन को अपने निवास स्थान में प्रेषक राज्य के ध्वज तथा प्रतीक चिह्न (Emblem) के प्रयोग करने का अधिकार है जिससे स्पष्ट रूप से उनकी पहचान की जा सके। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 30 (1) प्रावधान करता है कि किसी राजनयिक अभिकर्ता का निजी निवास-स्थान मिशन के परिसर के समान ही अनतिक्रमणीय और संरक्षणीय है। ग्राही राज्य के अभिकर्ता बिना मिशन के प्रमुख की अनुमति के उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। स्वागतकर्ता राज्य की पुलिस, न्यायालय का कोई कर्मचारी इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। यदि इस क्षेत्र में कोई अपराधी प्रवेश कर जाए तो दूतावास के अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे उसे राज्य सरकार को सौंप दें। यदि कोई अपराधी इस परिसर में प्रवेश में कर जाता है, तो ऐसा होने पर राज्य आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। स्पष्ट है कि यह नहीं समझना चाहिए कि परिसर की अनतिक्रमणीयता असीमित है।

4. फौजदारी क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति (Exemption from Criminal Jurisdiction)- राजनयिक अभिकर्ताओं का स्वागतकर्ता राज्य के फौजदारी क्षेत्राधिकार से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की जाती है। कानून और व्यवस्था के नाम पर उनको बंदी नहीं बनाया जा सकता है और न पुलिस द्वारा उनको पकड़कर उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है। उनसे यह आशा की जाती है कि अपराध न करें और स्वागतकर्ता राज्य के कानूनों का स्वेच्छा से पालन करें। वियना अभिसमय की अनुच्छेद 31 प्रावधान करता है कि राजनयिक अभिकर्ता स्वागतकर्ता राज्य को दण्डित करने का अधिकारी नहीं है।

5. दीवानी क्षेत्राधिकार से उन्मुक्ति (Exemption from Civil Jurisdiction)-राजदूत जिस देश में नियुक्त किया जाता है और जब तक वह राजदूत के पद पर रहता है तब तक वह सब प्रकार के दीवानी मुकदमों से मुक्त रहता है। सन् 1708 में ब्रिटेन में एक कानून पारित किया गया था जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति द्वारा राजदूत पर किसी भी प्रकार का कानूनी मुकदमा घोर दण्डनीय अपराध घोषित किया गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इस प्रकार का कानून पारित किया गया था कि जो कोई राजदूत के विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही करेगा वह अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन करेगा और राष्ट्रीय शांति में हस्तक्षेप

करेगा। दूतावासों को ऋण न चुकाने पर बंदी नहीं बनाया जा सकता और न ही उनकी गाड़ियों, घोड़ों, तथा साज-समान को जब्त किया जा सकता है।

6. गवाही देने से उन्मुक्ति (Exemption from Witnessing)-राजनयिक प्रतिनिधियों को यह उन्मुक्ति प्राप्त होती है कि उन्हें किसी न्यायालय में गवाह के रूप में प्रस्तुत किया जाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उसे गवाही देने के लिए न तो किसी न्यायालय में बुलाया जा सकता है और न ही घर जाकर कोई अधिकारी उसकी गवाही ले सकता है। वियना अभिसमय 31 (2) प्रावधान करता है कि कोई राजनयिक अभिकर्ता साक्षी के रूप में साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं होगा। यदि वह स्वयं गवाही देने को राजी हो तो न्यायालय उसके प्रमाण का लाभ उठा सकते हैं।

7. पुलिस से उन्मुक्ति (Exemption from Police)- जिस देश में राजनयिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति होती है यहाँ के पुलिस-नियमों से वह उन्मुक्त होता है। पुलिस के आदेश तथा नियम उस पर बाध्यकारी नहीं होते हैं। परन्तु सौजन्यवश स्थानीय व्यवस्था को कायम रखने के लिए तथा राज्य से अच्छे संबंध बनाये रखने के लिए वे पुलिस-नियमों का पालन करते हैं। जिन विषयों को पुलिस द्वारा नियमित किया जाता है उन पर राजदूत को मनमानी करने का अधिकार नहीं होता है। यह आशा की जाती है कि राजदूत पुलिस की उन सभी आज्ञाओं तथा नियमों का पालन करेगा, जो उसके कर्तव्य-पालन के मार्ग में रोड़ा नहीं बनते तथा समाज की सामान्य सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए उपयोगी हैं। ऐसा न करने पर राजदूत को दण्डित नहीं किया जा सकता, किन्तु इसे भेजने वाली सरकार से उसे वापस बुलाने की प्रार्थना की जा सकती है।

8. पत्र-व्यवहार की स्वतंत्रता (Freedom of Communication)- राजदूत अपना कार्य सुचारु रूप से संपन्न कर सकें इसके लिए उसे अपनी सरकार के साथ पत्र-व्यवहार की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। उसके पत्र-व्यवहार, तारों, संदेशों और कूटनीतिक थैलों (Diplomatic Bags) का स्थानीय सरकार द्वारा निरीक्षण नहीं किया जा सकता है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 27 प्रावधान करता है कि सूचना की स्वतंत्रता पत्र वाहक तथा संकेत संदेश (Code Messages) को शामिल करता है।

9. करों तथा सीमा शुल्कों से उन्मुक्ति (Immunity from Taxes and Custom Duties)-वियना अभिसमय, 1961 का अनुच्छेद 34 प्रावधान करता है कि राजनयिक अभिकर्ता को सभी शुल्कों और करों से छूट प्राप्त होगी। चाहे वे वैयक्तिक या स्थावर संपत्ति संबंधी हों या चाहे राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या नगरपालिका हौं। इस संबंध में उन्मुक्ति पहले शिष्टाचार के कारण प्रदान की जाती थी किन्तु अभिसमय ने इस प्रयोज्य (Applicable) नियमों के अत्यधिक स्पष्ट परिभाषा तथा कतिपय अपवादों के साथ शामिल किया है। स्थानीय सरकार राजदूत पर आयकर या दूसरे प्रत्यक्ष कर नहीं लगा सकती। यह स्वागतकर्ता राज्य की सम्प्रभुता का विषय नहीं बनाया जा सकता। उससे मकान, बिजली, सफाई, नल आदि सेवाओं का मूल्य लिया जा सकता है। कुछ देशों के सौजन्यवश यह भी नहीं लिया जाता। राजदूत एवं उसके परिवार के सदस्य व्यक्तिगत उपयोग की जो चीजें माँगते हैं उन पर कोई सीमा शुल्क अथवा चुंगी नहीं ली जाती है।

10. धार्मिक अधिकार (Right of Religion)-राजदूत को धर्म के क्षेत्र में यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वह अपने विश्वास के अनुसार पूजा और उपासना कर सके। उसका धर्म स्थानीय धर्म और विश्वास से भिन्न हो सकता है। अपनी उपासना के लिए वह मन्दिर, गिरजाघर, मस्जिद आदि का निर्माण करा सकता है। किन्तु वह ग्राही राज्य के राष्ट्रिकों को उपासना में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, उनको ग्राही राज्य में अपने धर्म का प्रचार करने का अधिकार नहीं है।

11. संचालन तथा यात्रा की स्वतंत्रता (Freedom of Movement and Travel)-वियना अभिसमय का अनुच्छेद 26 प्रावधान करता है कि राजनयिक अभिकर्ता ग्राही राज्य के राज्य क्षेत्र में यात्रा करने के लिए स्वतंत्र है। परन्तु यह स्वतंत्रता प्रतिबंधित सुरक्षा क्षेत्र (Prohibited Security Zone) के लिए नहीं है। ऐसे क्षेत्र में यात्रा से संबंधित विधियों और विनियमों तथा ग्राही राज्य द्वारा निर्मित विधियों के अधीन होती हैं।

12. विदेशी दूतावास में शरणदान (Asylum in Foreign Legations)-विभिन्न देशों में दूतावास में राजनीतिक अपराधियों को शरण देने के बारे में अलग-अलग व्यवस्थायें प्रचलित हैं। प्रारंभ में अधिकतर राज्यों के दूतावासों में राजनीतिक शरणदान देने की परंपरा थी परन्तु आजकल यह केवल दक्षिण अमेरिका के राज्यों में है। अन्य राज्यों में दूतावासों को यह विशेषाधिकार

प्राप्त नहीं है। यदि कोई राजनयज्ञ ऐसा करता है तो स्थानीय सरकार शक्ति का प्रयोग करके अपराधी को पकड़ने का अधिकार रखती है। दूतावास में मानवीय दृष्टि से ऐसे लोगों को शरण दी जा सकती है जो उत्तेजित भीड़ के आक्रमण से भयभीत हो।

13. निजी यात्री सामानों के निरीक्षण से उन्मुक्ति (Immunity from Inspection of Personal Baggage)-राजनयिकों को यात्री सामानों के निरीक्षण से छूट प्राप्त है। परन्तु सीमा शुल्क विभाग के निरीक्षण से राजनयिक के निजी सामानों को छूट प्रदान करने का सामान्य अभ्यास सीमित कर दिया गया है। निजी यात्री के सामानों का निरीक्षण राजनयिक अभिकर्ता या उसके अभिकर्ताओं की उपस्थिति में किया जा सकता है, यदि यह आशंका करने का गंभीर आधार हो कि उसके द्वारा लायी जाने वाली वस्तुएँ शासकीय प्रयोग के लिए नहीं हैं।

14. सार्वजनिक सुरक्षा के प्रावधानों से उन्मुक्ति (Immunity from Social Security Provision)-वियना अभिसमय के अनुच्छेद 33 के अनुसार, राजनयिक अभिकर्ता को नियुक्त किए जाने वाले राज्य के लिए की गई सेवाओं के संबंध में ग्राही राज्य के सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों से छूट रहती है।

15. सैनिक उत्तरदायित्वों से छूट (Immunity from Military Functions)-वियना अभिसमय के अनुच्छेद 35 के अनुसार राजनयिक प्रतिनिधियों का नियुक्त किये जाने वाले राज्य के स्थानीय तथा सैनिक उत्तरदायित्वों से भी छूट है।

अग्रत्व का नियम, प्रत्यय पत्र और पूर्ण शक्ति [PRINCIPLE OF PRECEDENCE, LETTER OF CREDENCE AND FULL POWERS]

निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए-

I. राजनयिक निकाय (The Diplomatic Body)

II. राजदूत का प्रत्यक्षीकरण (Accreditation of a Diplomat)

III. पूर्व स्वीकृति (Agreement)

IV. प्रत्यय पत्र और पूर्ण शक्ति पत्र (Letter of Credence and Full Powers)

V. अग्रत्व का नियम (Principle of Precedence)

उत्तर- 1. राजनयिक निकाय (The Diplomatic Body)-देश के सभी राजनयिक प्रतिनिधियों के समूह को राजनयिक निकाय कहा जाता है। इस राजनयिक निकाय में मिशनों के अध्यक्ष, पार्षद, सचिव और सहचारी सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त राजनयिक कार्यालय से संबंधित कर्मचारी भी इसमें भाग लेते हैं। इसमें मिशन के सदस्यों की पत्नियों और वयस्क पुत्रियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

राजनयिक निकाय का अध्यक्ष वरिष्ठतम राजदूत होता है। इसे डोयन या डीन (Doyen or Dean) कहा जाता है। इसका कर्तव्य है कि राजनयिक मिशन और अन्य निकायों के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों की रक्षा करें। इस पदाधिकारी के कार्य सीमित होते हैं। वह सार्वजनिक अवसरों पर अपने साथियों का अभिभावक होता है और उनके विशेषाधिकारों की रक्षा करता है। किसी भी उत्सव के अवसर पर वह राजनयिक मिशनों के अध्यक्षों को संदेश देता है। अपने साथियों की ओर से वह जो कुछ भी लिखता है या रिकार्ड्स रखता है, उसके संबंध में पहले उनसे विचार-विमर्श कर स्वीकृति प्राप्त कर लेता है। अपनी सरकार से अनुमति प्राप्त करके ही राजनयिक मिशन का अध्यक्ष किसी प्रश्न पर संयुक्त कार्यवाही में शामिल होता है।

वरिष्ठतम राजनयिक की पत्नी को डोपनी कहा जाता है। इसका कार्य स्वागतकर्ता राज्य के सम्मुख राजनयिक निकाय की महिलाओं को परिचय देना होता है। जिस राजनयिक मिशन का अध्यक्ष अविवाहित होता है, उसकी महिलाओं के संदर्भ में

डोपनी का यह कार्य विशेष महत्त्व रखता है। जहाँ से सम्प्रभु के सामने डोपनी द्वारा राजनयिक निकाय की प्रत्येक महिला का नामोच्चारण करने की परंपरा है यहाँ डोपनी का पद महत्त्वपूर्ण बन जाता है। नीदरलैण्ड की परंपरा के अनुसार किसी राजनयिक मिशन के अध्यक्ष की नवागंतुक पत्नी का वहाँ के विदेश मंत्री की पत्नी तथा राजनयिक निकाय की अन्य महिलाओं को परिचय कराते समय डोपनी साथ देती है।

II. राजदूत का प्रत्यक्षीकरण (Accreditation of a Diplomat)-कभी-कभी राज्यों द्वारा एक राजधानी में एक से अधिक व्यक्तियों का प्रत्यक्षीकरण भी किया जाता है। युद्धकाल में तकनीकी, आर्थिक, और सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राजदूत के साथ-साथ मंत्रियों की भी नियुक्ति की जाती है। द्वितीय महायुद्ध के काल में वाशिंगटन में ब्रिटेन का एक राजदूत व तीन मंत्री कार्य करते थे। कई राज्यों में राजदूत और मंत्री एक साथ कार्य करते हैं। सामान्यतः एक ही राज्य में एक से अधिक राजदूत नहीं रखा जाता, किन्तु एक राजदूत एक ही समय में एक से अधिक राज्यों में प्रतिनिधित्व कर सकता है। ऐसा राज्यों की निकटता तथा मितव्ययता के कारण किया जाता है। जैसे भारत के राजदूत मोहम्मद करीम छात्रला वाशिंगटन के साथ-साथ क्यूबा में भी भारत के राजदूत थे। धनाभाव के कारण बंगलादेश की स्वतंत्रता के पश्चात् बंगला देश द्वारा लंका में मिशन खोलने के बाद भी श्रीलंका ने ढाका में अपना मिशन नहीं खोला। कभी-कभी समझौते द्वारा कोई राज्य अन्य राज्य के राजदूत को अपने प्रतिनिधि के रूप में भी काम ले लेता है। 1870 ई. में पेरू राज्य ने संयुक्त राज्य अमेरिका के दूत की सेवा चीन व जापान में अपने प्रतिनिधि के रूप में ली थी।

III. पूर्व स्वीकृति (Agreement) — राज्य किसी भी व्यक्ति को उसके लिंग, धर्म, जाति और आयु आदि पर विचार किए बगैर राजदूत नियुक्त कर सकता है। साथ ही उसे यह भी अधिकार है कि वह किसी भी ऐसी नियुक्ति को अस्वीकार कर सकता है जो पर-देश द्वारा की गई हो। ऐसी स्थिति में कटुता और द्वेषपूर्ण संबंध से बचने के लिए राजनयिक पर नियुक्ति से पूर्व उसके नाम की स्वीकृति विदेशी सरकार से ले ली जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था जो पूर्व स्वीकृति (Agreement) एवं राजदूत अभिमत व्यक्ति (Persona grata) की द्योतक है, अति स्वीकृति (Accreditation) कहलाती है। प्रत्येक राज्य बिना कारण बताए अपने देश में नियुक्ति पाने वाले राजनयिक की नियुक्ति को अस्वीकार कर सकता है। 1928 के हवाना कन्वेंशन की धारा 8 के अनुसार, "किसी भी राज्य को अन्य राज्यों में अपने राजनयिक अधिकारी उनकी पूर्वानुमति प्राप्त किये बिना भेजने का अधिकार नहीं होगा।" ऐसे राज्य चाहे तो दूसरे राज्य के अधिकारी को स्वीकार करने से इंकार कर सकते हैं या उसे स्वीकार करने के पश्चात् भी वापस बुलाने के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। यहाँ तक कि उसे कार्यवाहक कार्य करने के लिए रखा जा सकता है।

IV. प्रत्यय पत्र और पूर्ण शक्ति पत्र (Letter of Credence and Full Powers)-पर-राज्य की स्वीकृति के पश्चात् ही राजदूत को स्वीकारी राज्य में भेजा जाता है, जहाँ वह राजाध्यक्ष के सामने अपने प्रत्यय-पत्र प्रस्तुत करता है। यह प्रथा काफी प्राचीन है। उस समय प्रत्यय-पत्र न होने की स्थिति में उस व्यक्ति को तुरंत मार डाला जाता था। नये राजदूत को स्वीकारी राज्य जाते समय अपने साथ प्रत्यय-पत्र ले जाने पड़ते हैं, जो प्रेषित राज्य के राज्याध्यक्ष द्वारा स्वीकारी राज्य के राज्याध्यक्ष के नाम होते हैं। यदि राजदूत कार्यवाहक स्तर का है तो वह पत्र प्रेषित राज्य के विदेश मंत्री द्वारा लिखित स्वीकारी राज्य के विदेश मंत्री के नाम से सम्बोधित होते है। ये पत्र इस बात के प्रमाण होते हैं कि वह व्यक्ति राज्य का प्रतिनिधि है। ह्वीटन के अनुसार, "प्रत्येक राजनयिक अभिकर्ता को उसी रूप में स्वीकार किये जाने के लिए तथा अपने पद से संबंधित अधिकारों और सम्मान का उपयोग करने के लिए प्रत्यय-पत्र अवश्य दिया जाना चाहिए।" इन पत्रों में राजदूत की नियुक्ति की सूचना होती हैं तथा यह आशा की जाती है कि स्वीकारी राज्य उसे प्रेषित राज्याध्यक्ष का व्यक्तिगत प्रतिनिधि समझेगा। नये राजदूत को अपने पूर्वाधिकारी राजदूत के प्रत्यावहन पत्र (Letter of Recall) की पेशगी की जानकारी भी कर लेनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर उस पत्र को भी साथ ले जाना चाहिए। प्रत्यय-पत्र में राजदूत का परिचय उसकी स्थिति तथा उसके कार्यों का वर्णन होता है। पहले ये अलंकृत भाषा में लिखे जाते थे परन्तु आजकल ये सरल सामान्य भाषा में लिखे जाते हैं।

इन पत्रों को स्वीकारी राज्य के राज्याध्यक्ष के सामने एक समारोह में प्रस्तुत किया जाता है। इसकी औपचारिकता की पूर्ति के पश्चात् ही कोई राजदूत अपना कार्य कर सकता है। प्रत्यय-पत्र खो जाने अथवा किहीं कारणों से साथ नहीं होने पर राजदूत को अस्थायी काल के लिए नये प्रत्यय पत्र की प्राप्ति तक कार्य करने की अनुमति दे दी जाती है। राजतंत्रात्मक देशों में राजा अथवा सम्राट की मृत्यु के बाद नये प्रत्यय पत्र जौरी किए जाते हैं। परन्तु उस समय कोई समारोह नहीं होता है। गणतंत्र देशों में

राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री की मृत्यु पर ऐसा कुछ नहीं होता, क्योंकि वहाँ प्रभुसत्ता एक व्यक्ति में न होकर जनता में निहित होती है। कभी-कभी प्रत्यय पत्र विलम्ब से भी प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरणार्थ चार्ल्स डेनबी की चीन में अमेरिकी राजदूत के रूप में नियुक्ति को लिया जा सकता है यह तुरंत कार्य करने लगा। परन्तु चीन के भावी सम्राट के नाबालिग होने के कारण छः वर्ष पश्चात् 1891 में अपने प्रत्यय पत्र प्रस्तुत कर सका। ऐसी ही स्थिति इटली के समक्ष भी आई थी इटली सरकार ने इटली के सम्राट को इथियोपिया का सम्राट भी घोषित कर दिया था। फ्रांस द्वारा इटली में नियुक्त राजदूत के प्रत्यय पत्रों में 'इटली का राजा' न लिखकर 'इथियोपिया का सम्राट' लिखा गया। यह विवाद महीनों तक चलता रहा और फ्रांस के कार्यवाहक दूत से ही कार्य चलाता रहा। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 2 अक्टूबर, 1974 को दक्षिण अफ्रीका के प्रत्यय-पत्र को अस्वीकार कर दिया था क्योंकि दक्षिण अफ्रीका निरंतर संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की अवहेलना करता रहा था।

पूर्ण-शक्ति-पत्र अथवा पूर्णाधिकार पत्र (Full Powers)— किसी भी राजनयिक की विशेष कार्यवश सम्मेलन में भाग लेने या संधि करने के लिए भेजे जाने पर राज्याध्यक्ष द्वारा विशेष अधिकार पत्र प्रदान किए जाते हैं, जिन्हें पूर्ण शक्ति-पत्र कहते हैं। इन पत्रों से राजनयिकों के कार्य और अधिकारों का वर्णन होता है। विशेष दूत अपने प्रत्यय-पत्र के साथ पूर्व अधिकार हेतु अन्य पत्र भी प्रस्तुत करता है। प्रारंभ में इसकी भाषा लैटिन होती थी, परन्तु आजकल इसकी भाषा प्रायः अंग्रेजी होती है। सम्मेलन से पूर्व इन पत्रों की जाँच होती हैं। ये पत्र सम्मेलन बुलाने वाले देश की सरकार अथवा तत्संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के पास ही रहते हैं। प्रेषित राज्य अपने राजनयिकों को इन पत्रों के अलावा भी निर्देश, दे सकता है जो लिखित अथवा मौखिक, गुप्त या सार्वजनिक दोनों ही हो सकते हैं। प्रायः ये लिखित व गुप्त होते हैं।

राजदूत को स्वदेश से स्वागतकर्ता राज्य तक पहुँचने के लिए पासपोर्ट दिया जाता है। इसके आधार पर मार्ग में आने वाले राज्य उसकी विशेष स्थिति से परिचित हो जाते हैं। वे उसे सुरक्षा और अन्य सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं। पासपोर्ट राजदूत के साथ-साथ उसके परिवार के सदस्यों को भी प्रदान किया जाता है। राजनय को कुछ अन्य कागजात और अभिलेख भी दिए जाते हैं। जिनसे वह स्वदेश एवं विदेश के विदेश मंत्रालयों के संगठन तथा कार्य का ज्ञान प्राप्त कर सके और अपने दायित्वों का निर्वाह कर सके।

V. अग्रत्व का नियम (Principle of Precedence) — अग्रत्य का तात्पर्य उस प्रचलित नियम से है जिसका ध्यान किसी देश के उच्चस्तरीय राजकीय और सामाजिक अथवा राजनीतिक परिषदों में उक्त देश में स्थित विदेशी राजनयिक प्रतिनिधियों के स्थान ग्रहण के क्रम में रखना पड़ता है। पहले यह सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण माना जाता था क्योंकि प्रत्येक राजदूत अपने राज्याध्यक्ष के उत्कर्ष और गौरव को पूर्ण प्रतिनिधित्व करता था। अतः व्यवहार में एक राजदूत के रूप में स्वयं राज्याधिपति ही विदेश में उपस्थित रहता था। इसी के परिणामस्वरूप अग्रत्व के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ। सामाजिक समारोहों में सबसे शक्तिशाली और प्रतिष्ठित राज्य के राजदूत को पहला स्थान और कम शक्ति और गौरव वाले राजदूत को अंतिम स्थान दिया जाता था। सैद्धांतिक दृष्टि से यह नियम श्रेष्ठ और उपयुक्त था। किन्तु व्यवहार में उस देश की शक्ति और प्रतिष्ठा का आंकलन करने की समस्या उत्पन्न होती थी। इस प्रश्न पर उस समय तक कोई लिखित संधि या समझौता भी नहीं था। फलतः अग्रत्व के प्रश्न पर राज्यों के बीच आए दिन विवाद होते रहते थे। कभी-कभी यह विवाद सशस्त्र संघर्ष का रूप धारण कर लेते थे। वियाना रेगलमेन्ट की धारा 4 के अनुसार राजदूत का क्रम पर-राज्य में पहुँचने की घोषित सरकारी तिथि से तय किया जाता था। कभी-कभी यह क्रम प्रत्यय पत्र प्रस्तुत करने की तिथि से भी निश्चित किया जाता था। राजदूत चाहे महाशक्ति का ही प्रतिनिधि क्यों न हो परन्तु छोटे-से-छोटे राज्य के राजदूत ने भी यदि प्रत्यय पत्र पहले प्रस्तुत किया है तो वह महाशक्ति के राजदूत से बरिष्ठ होगा। किसी राजा या सम्राट की मृत्यु के कारण नये प्रत्यय पत्र प्रस्तुत करने पर राजनय की वरिष्ठता में कोई अंतर नहीं आता।

वियना कांग्रेस तक ईसाई राज्यों के लिए अग्रत्व का निर्णय पोप द्वारा किया जाता था। इस दृष्टि से स्वयं को प्रथम स्थान पर, रोमन साम्राज्य के सम्राट को दूसरे स्थान पर और रोमनों के राजा की गणना तीसरे स्थान पर करता था। पोप के इस वर्गीकरण से राज्य संतुष्ट नहीं थे। उनमें विवाद छिड़ जाता था। 16वीं और 17वीं शताब्दी में राजनयिक इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। तत्कालीन समय में अग्रत्व के नियम को कुछ परिणाम इस प्रकार थे-

1. राजदूत को अपने सम्प्रभु के गौरव तथा सम्मान की दृष्टि से तड़क-भड़क प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त व्यय करना पड़ता था। यह उनकी जेब से खर्च होता था। सेवा मुक्त होने पर उन पर कर्ज का अधिक भार हो जाता था।

2. अपनी शान-शौकत और स्तर के कारण वे निम्न स्तर के कर्मचारियों और गैर-सरकारी लोगों से मिलना पसंद नहीं करते थे।

सन् 1815 में वियना कांग्रेस में अग्रत्व के लिए कुछ निर्णय लिए गए थे। इसमें राजनयिक वर्ग को सर्वश्रेणियों में विभक्त किया गया था। विभिन्न राज्य इन श्रेणियों के अनुसार अग्रत्व का निर्धारण करने लगे। सोवियत संघ ने इस व्यवस्था में परिवर्तन कर अपने सभी राजदूतों को एक ही श्रेणी प्रदान कर दी और उन्हें पूर्ण सत्ताधारी प्रतिनिधि कहा जाने लगा। यह अकेली व्यवस्था चल न सकी और सोवियत संघ की पुराना वर्गीकरण अपनाना पड़ा।

वियना कांग्रेस में यह भी निर्णय लिया गया कि अग्रत्व की दृष्टि से राजनयिक प्रतिनिधियों की चार श्रेणियों अपने क्रम से स्थान पाएँगी और प्रत्येक वर्ग के राजनयिकों में पहले नियुक्त होने वाले को अग्रत्व पहले और बाद में नियुक्त होने वाले को बाद में स्थान दिया जाएगा।

इस प्रकार वह राजदूत जो किसी राजधानी में सबसे अधिक समय से रह रहा है, वह सबसे वरिष्ठ माना जाएगा। इस नियम के फलस्वरूप पोपीय राजदूत कैथोलिक देशों में राजनयिक निकाय का दूत शिरोमणि माना जाता है। इसे कांग्रेस के निर्णय की धारा-3 के अंतर्गत यह बताया गया है कि किसी विशेष मिशन के सदस्यों की दूसरे निम्नांकित राजदूतों के ऊपर स्थान नहीं दिया जाएगा। बाद में यह नियम समाप्त हो गया और आग्रत्य का निर्णय प्रत्यय पत्र प्रस्तुत करने की तिथि के आधार पर ही तय किया जाने लगा। इसी कारण संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि को तिथि के अनुसार जार्ज पष्ठम की मृत्यु-समारोह में काफी निम्न स्थान मिला था।

सन् 1815 और 1818 में दूतों के वर्गीकरण के संबंध में लिए गए निर्णयों के पुनर्मूल्यांकन के लिए 1927 में विशेषज्ञों की समिति बनाई गई। उसने विभिन्न राज्यों के सुझावों के आधार पर कुछ निर्णयों में संशोधनों को पूर्ववत् स्वीकार करने पर बल दिया। बाद में 1961 के वियना कन्वेंशन की धारा 16 व 17 के द्वारा अग्रत्व के निश्चित नियमों का निर्धारण कर दिया गया है।

पैरा 16-

1. दूतावासों के प्रमुख धारा-16 के अनुसार अपने कार्यभार ग्रहण करने के दिनांक तथा समय के क्रम से अपने-अपने वर्गों में अग्रत्व ग्रहण करेंगे।

2. दूतावास के प्रमुख के प्रत्यय पत्र में हुए ऐसे परिवर्तन, जिनसे उसकी श्रेणी में कोई अन्तर नहीं पड़ता हों, उसके अग्रत्व पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

3. इस धारा का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव स्वागतकर्ता राज्य के द्वारा स्वीकृत उस पद्धति पर नहीं पड़ेगा। जो पाप का प्रतिनिधि के अग्रत्व के सबंध में हो।

धारा 17-दूतावास के राजनयिक अभिकर्ताओं का अग्रत्व दूतावास के प्रभाव द्वारा विदेश मंत्रालय को जैसा कि स्वीकृति हो जाए, विज्ञापित किया जाएगा। अग्रत्व के प्रश्न से उत्पन्न प्रत्येक विवाद में अंतिम निर्णय स्वागतकर्ता राज्य का होता है।

किसी राजदूत की मृत्यु, स्थानान्तरण और त्यागपत्र की स्थिति में उसके अग्रत्व का प्रश्न जटिल बन जाता है। इसका समाधान अन्तरराष्ट्रीय कानून की सहायता से किया जा सकता है। जब अग्रत्व का निर्णय नियुक्ति की तिथि के आधार पर करते हैं तो सबसे पुराने राजदूत को सबसे अधिक सम्मान दिया जाता है। उस देश में स्थित सभी राजनयज्ञों के वरिष्ठ होने के कारण उसे वरिष्ठ दूत या डॉयन (Doyen) की उपाधि प्रदान की जाती है।

वर्तमान व्यवहार-राजनयिक अभिकर्ताओं की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं और प्रत्येक श्रेणी में अग्रत्व का निश्चय राजधानी में एक राजनयज्ञ के आने की राजकीय सूचना के आधार पर किया जाता है।

जब प्रेषक अथवा स्वागतकर्ता राज्य के सम्प्रभु का स्वर्गवास हो जाता है या सरकार बदल जाती है तो राजनयज्ञों को नए प्रत्यत्र -पत्र जारी किए जाते हैं। इन राजनयज्ञों के आने की तिथियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः यह समस्या उठती है कि क्या इसके आधार पर राजनयज्ञों के अग्रत्व या वरिष्ठता में अंतर किया जाए। 1830 में राजनयिक मिशनों के अध्यक्षों ने पेरिस में यह

स्वीकार किया कि नए प्रत्यय-पत्र प्रसारित करने की तिथि चाहे कुछ भी हो, उसकी वरिष्ठता अप्रभावित रहेगी। यही व्यवस्था 1848 तथा 1852 में भी की गई। आजकल इसी मत का आदर किया जाता है।

अग्रत्व के संबंध में प्रत्येक राज्य के संप्रभु के अपने नियम होते हैं। यदि वहाँ विदेशी राजनयज्ञ कोई भिन्न नियम स्वीकार कर ले तो संप्रभुता के नियम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अग्रत्व के संबंध में उत्पन्न संदेह की स्थिति में स्वागतकर्ता राज्य का निर्णय मान्य समझा जाता है।

राजदूत और राजनयिक मिशनों के अध्यक्षों को किसी भी समारोह में उनके सम्मान के आधार पर स्थान दिया जाता है। स्थान का निश्चय स्थानीय नियमों के आधार पर किया जाता है। राजदूत को उत्सव से न बुलाना गंभीर विषय माना जाता है। अतीत काल में इसके परिणामस्वरूप राज्यों में कटुता भी पैदा हुई है।

राजतंत्रात्मक देशों में राजनयिक निकाय का स्वर राजपरिवार के सदस्यों के बाद रखा जाता है। गणराज्यों उनका अग्रत्व स्पष्ट नहीं रहता हैं। फ्रांस में राजनयिक निकाय का स्थान सीनेट और द्वितीय सदन के अध्यक्षों के बाद आता है। अमेरिका में यह उपराष्ट्रपति के बाद आता है।

राज्य के किसी समारोह में राजनयज्ञ की अनुपस्थिति को पर्याप्त राजनीतिक महत्त्व दिया जाता है। 1818 में फ्रांस के राजा के जन्मदिन समारोह में पर्सिया के राजदूत की अनुपस्थिति की जनता में पर्याप्त चर्चा रही तथा यह अनुमान लगाया गया कि दोनों सरकारों के बीच मतभेद हैं। राज्य सरकार अपने राजदूत को समारोह में भाग लेने का निर्देश देती है। जब राजदूत स्वागतकर्ता राज्य के संप्रभु से व्यक्तिगत बैठकों में मिलते हैं तो भी अग्रत्य के क्रम को ध्यान में रखा जाता है।

11 आदर्श राजनयिक [IDEAL DIPLOMAT]

1. एक आदर्श राजनयज्ञ के मुख्य गुणों का वर्णन कीजिए। ये गुण एक राजनयज्ञ को वार्ता में किस प्रकार सहायक होते हैं? (Discuss the main qualities of a good diplomat. How do these qualities assist a diplomat in negotiations?)

अथवा

एक आदर्श राजनयिक की पूर्व-अपेक्षाओं और गुणों की विवेचना कीजिए।

(Discuss the prerequisites and qualities of an Ideal Diplomat.)

अथवा

आदर्श राजनयिक के गुणों का वर्णन कीजिए।

(Discuss the qualities of an Ideal Diplomat.)

उत्तर- वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन में राजनायिक अभिकर्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनयिक अभिकर्ताओं का अर्थ ऐसे व्यक्तियों से है जो अपने राज्य और स्वागतकर्ता राज्य के राजनीतिक संबंधों का संचालन तय करते हैं। फ्रांस में इनकी सार्वजनिक मंत्री (Public Ministers) कहा जाता है। एक राजनयिक अभिकर्ता का यह कर्तव्य है कि वह अन्य राज्यों से अपने राज्य के अच्छे संबंधों का तथा अपने देशवासियों के हितों को ध्यान में रखे और सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।

इन अभिकर्ताओं की सहायता अनेक पदाधिकारियों द्वारा की जाती है। राजनयिक प्रतिनिधियों की परिभाषा देते हुए **लारेंस** ने कहा है कि "विदेशी राज्य सभाओं में स्थायी रूप से रहने हेतु राजदूतों को भेजने की रीति का प्रारम्भ उपयोगिता से अधिक

राजनीतिक कारणों से है।" अतः राजनयिक प्रतिनिधि वे राजदूत होते हैं जो एक राज्य द्वारा विदेशों ने प्रतिनिधि के रूप में स्थायी निवास के लिए भेजे जाते हैं।

ओपनेहीम के अनुसार- "यद्यपि राजनयिकता (Diplomacy) उतनी ही पुरानी है जितना कि राज्यों में पारस्परिक सम्पर्क तवापि कर्मचारियों का विशेष वर्ग जिसे राजनयिक कहते हैं तब तक नहीं ये और हो भी नहीं सकते ये जब तक कि स्यायी दूतावास अस्तित्व में नहीं आएगा।"

श्री नेगी के अनुसार राजनयज्ञ में निम्नलिखित गुण होने चाहिए- "वह भाषाविद् हो, धर्मशास्त्री हो, प्लेटो और अरस्तू के दर्शन का माना हुआ विद्वान् हो, गणित, संगीत, वास्तुकला, भौतिक शास्त्र तथा कानून ज्ञाता हो। इसके अतिरिक्त उसे लैटिन, फ्रेंच, स्पैनिश, जर्मन तथा तर्किश भाषाओं का ज्ञाता होना चाहिए। इतिहास, भूगोल तथा काव्य में भी उसका दखल होना चाहिए तथा उसे धनवान, स्वस्य, सुन्दर तथा उच्च परिवार का सदस्य होना चाहिए।"

के. एम. पन्निकर के अनुसार- "यह बात तो आमतौर पर सभी मानते हैं कि प्रखर बुद्धि राजनयज्ञ का पहला गुण है। राजनयनों पर सबसे अधिक दोष चातुर्य की कमी का लगाया जाता है। प्रखर बुद्धि के महत्व पर तो किसी को सन्देह नहीं परन्तु इसके कारण हमें अन्य गुणों जैसे धैर्य, मर्यादा, विवेक और गम्भीरता आदि को न भूलना चाहिए। राजनयज्ञ के अस्त्रागार में ये सभी गुण होने चाहिए।"

मैकियावाली का कहना है कि-राजदूत को अपने आचरण तथा कार्यों से सम्मानीय प्रतीत होना चाहिए। सद्भाव और ईमानदारी की कीर्ति प्रत्येक राजदूत के लिए अनिवार्य है। टैसी के शब्दों में- "आदर्श राजदूत रखने के लिए तुम्हें पहले आदर्श राजा रखना होगा।"

एक राजनयज्ञ में निम्न गुणों का पाया जाना बहुत आवश्यक है-

(1) सत्यनिष्ठा (Truthfulness)-राजनयज्ञ का प्रथम गुण उसकी सच्चाई है। आज के युग में सच्चाई, आदर्श राजनयज्ञ का गुण माना जाता है। सच्चाई का अर्थ केवल झूठ बोलना नहीं बल्कि ऐसे कथन है जो झूठ का समर्थन न करे और केवल सच्चाई का समर्थन करें। यदि सत्य से किसी को भ्रांति हो जाये तो तुरन्त उसका स्पष्टीकरण कर उस भ्रम को दूर करे। सत्य बोलने वाला अपने प्रति विश्वास बैठा लेता है भले ही उसे कुछ हानि ही क्यों न हो। निकलसन के अनुसार- "सच्चाई का अर्थ केवल गलत वक्तव्य देने से बचना ही नहीं, बल्कि इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना है कि किसी गलत बात का आभास न दिया जाए और किसी सच्ची बात को न दबाया जाए।"

(2) शान्त (Calmness)- शान्त रहने का अर्थ चुप रहना नहीं बल्कि उत्तेजित न होना है। एक आदर्श राजनयज्ञ वार्ता करते समय शान्त रहता है भले ही विपक्षी झूठ बोलता है, बेईमानी से काम लेता है, असभ्यतापूर्ण व्यवहार करता है या धूर्तता दर्शाता है। ऐसे समय में उसे न क्रोधित होना चाहिए और न खीजना चाहिए वरन् इस अनैतिकतापूर्ण व्यवहार को सहन कर जाना चाहिए, उसे अपना वैमनस्य द्वेष या ईर्ष्या प्रकट नहीं करनी चाहिए। राजनयज्ञ को दूसरे की सुनना चाहिए और स्वयं नहीं बोलना चाहिए अथवा इतना ही बोलना चाहिए जिससे दूसरा व्यक्ति अपनी बात कहने के लिए उत्साहित अथवा प्रेरित होता रहे। शान्तिपूर्वक सुनने की इस आदत से उसको बहुमूल्य सूचना प्राप्त हो सकती है। एक आदर्श राजनयज्ञ का व्यवहार खूबसूरत हंस की भांति होना चाहिए जो ऊपर से दिखने में शान्त होता है परन्तु पानी में निरन्तर पैर चला रहा होता है। उसे हमेशा शान्त रहना चाहिए भले ही वह अन्दर ही अन्दर कितना ही परेशान क्यों न हो। उसे आत्म-सम्मान का प्रदर्शन भी नहीं करना चाहिए। उसे शान्त और धैर्यवान बना रहना चाहिए।

(3) नम्रता (Modesty)- एक राजनयज्ञ का शीलवान तथा नम्र होना आवश्यक है। अहंकार मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है। यदि राजनयज्ञ में यह कमजोरी है तो वह भयंकर भूलें कर सकता है। अहंकार राजनयज्ञ को किसी की बात न मानने के लिए विवश कर देता है। विजयी का घमण्ड पराजित के मन में द्वेष तथा घृणा पैदा कर देता है। अहंकार और अभिमान के वश में होकर राजनयज्ञ अपनी गलती मानना अपनी शान के विरुद्ध समझता है, और उसका परिणाम भयंकर होता है। के. एम. पन्निकर के शब्दों में- "कोई भयंकर गलती करके उस पर अड़े रहने का परिणाम अत्यन्त विनाशकारी होता है।" निकलसन का

मत है कि "सभी राजनयिक अवगुणों में (और वे अनेक हैं) व्यक्तिगत आडंबर निश्चित रूप से अधिक हानिकारक है।"

(4) गोपनीयता (Secrecy)- राजनय का मूल आधार गोपनीयता है जिसको बनाए रखना राजनयज्ञ का मूलभूत कर्तव्य है। राजनयज्ञ को वार्ता के दस्तावेजों एवं संकेताक्षरों को सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए। कैलियस के शब्दों में- "गोपनीयता राजनय की आत्मा है और गुप्त रहस्यों की रक्षा करने की योग्यता राजनयन के लिए आधारभूत है।" ("Secrecy is the very soul of diplomacy and ability to guard secrets is basic of diplomacy.") गोपनीयता को बनाए रखने के लिए राजनयज्ञ को अपने दस्तावेजों, फाइलों, प्रतिवेदनों आदि को किसी को भी नहीं ले जाने देना चाहिए। समय-समय पर गोपनीय दस्तावेजों का निरीक्षण करके यह देख लेना चाहिए कि वे सुरक्षित हैं।

(5) संक्षिप्तता और स्पष्टता (Brevity and Precision)-संक्षिप्तता और स्पष्टता राजनयज्ञ की विशिष्ट योग्यता है। एय. विल्डनर के अनुसार- "राजनयिक शैली अपनी सरलता और सुस्पष्टता से पहचानी जानी चाहिए।" संक्षिप्तता तथा स्पष्टता का अर्थ केवल बौद्धिक यथार्थता (Intellectual Accuracy) नहीं बल्कि नैतिक यथार्थता है। एक राजनयज्ञ में यह गुण होना चाहिए कि वह मन और बुद्धि से यथार्थवादी हो। ऐसा राजनयज्ञ अपनी सरकार को भुलावे में नहीं रखता, वह यथार्थ और सुस्पष्ट सूचनाएं देता है और उसकी स्पष्टता सिद्धि के लिए वह लिखित प्रमाण भी रखता है। सन्धिवार्ता में मौखिक वार्तालाप से काम नहीं चलता, उससे कभी-कभी असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अनुभवी तथा प्रशिक्षित राजनयज्ञ कभी ऐसी भूल नहीं करता है।

(6) सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन (Change acccording to the Timely Circumstances)-राजनयज्ञ में सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बदलने की क्षमता होनी चाहिए। राजनयज्ञ को जिद्दी नहीं होना चाहिए। कोलियों के शब्दों में- "राजनयज्ञ को चाहिए कि अपने को वह उस परिस्थिति में रखकर विचार करे जिस परिस्थिति में दूसरे देश का शासक है। उसमें दूसरे की भावना को अपनाने की क्षमता होनी चाहिए। अपने को दूसरे की भावना के संदर्भ में रखकर उसे यह सोचना चाहिए कि ऐसी परिस्थिति में वह स्वयं क्या करता।" जो राजनयज्ञ समय के अनुसार अपने का नहीं बदल सकता वह असफल सिद्ध होता है। के. एम. पन्निकर ने इस विषय में कहा है कि "दूसरे राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपने मूलभूत लक्ष्यों को समझ लेना चाहिए और उसकी प्राप्ति के लिए अविचलित रूप से काम करना चाहिए, परन्तु परिस्थितियों, सामान्य वातावरण, प्रमुख व्यक्तियों तथा आन्तरिक पटनाओं की प्रगति आदि के अनुसार उनकी प्राप्ति के साधन बदलते रहने चाहिए।"

(7) आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप (Non-interference in Internal Matters)-एक आदर्श राजनयज्ञ को स्वागतकर्ता राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं राजनयज्ञ को अपने दूतावास को स्वागतकर्ता राज्य के विरुद्ध प्रचार एवं विरोध का केन्द्र नहीं बनने देना चाहिए। उसे दूतावास को मित्र विरोध का केन्द्र नहीं बनने देना चाहिए।

(8) धैर्य एवं सतत कार्यशीलता (Patience and Perserverance)- शान्ति वही व्यक्ति रख सकता है जो धैर्यवान हो। धैर्य को छोड़ने वाला व्यक्ति कभी-कभी कठिन परिस्थितियों में फंस जाता है। सफलता वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो धैर्य रखकर लगातार प्रयत्नशील बना रहता है। धैर्य सफल राजनयज्ञ का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण गुण है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सफलता उसी व्यक्ति को मिली है जो धैर्यवान और सतत प्रयत्नशील रहा है। असफलता मिलने पर भी निराश न होना और बराबर उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना, एक राजनियज्ञ का आवश्यक गुण है।

(9) राष्ट्रीय सम्मान (National Honour)-एक आदर्श राजनयज्ञ को अपने देश का सम्मान लगातार बनाए रखना चाहिए। अपने देश के राष्ट्रीय सम्मान को प्राप्त करने के लिए राजनयज्ञ को दूसरे देश को भी सम्मान देना चाहिए तभी वह अपने देश के प्रति स्वागतकर्ता देश की जनता में सम्मान पैदा कर सकता है।

(10) स्वामी-भक्ति (Loyalty)- स्वामी-भक्ति और वफादारी भी एक सफल राजनयज्ञ का विशेष गुण होता है। राजनयज्ञ अपनी सकार के प्रति तथा विदेश विभाग के प्रति उत्तरदायी होता है। सरकार में परिवर्तन होने पर वह दूसरी सरकार का भी उतना ही वफादार होता है जितना पहली सरकार के प्रति था। सरकार के बदलने पर उसकी वफादारी में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। अविश्वसनीय राजनयज्ञ, राजनयज्ञ नहीं रहता है। राजनयज्ञ को इस बात का विश्वास होना चाहिए कि उसके देश की

नीति सही तथा न्यायिक है। उसे अपने व्यक्तिगत विचारों को एक तरफ रखकर अपनी सरकार द्वारा निर्धारित नीति का ईमानदारी से पालन करना चाहिए। इसके साथ-साथ उसे अपने सहयोगियों का भी विश्वास प्राप्त करना होता है। इसके अतिरिक्त उसे स्वागतकर्ता राज्य के विश्वास एवं सम्मान का पात्र भी बनना बहुत जरूरी है। राजनयज्ञ यह कार्य तभी कर सकता है जब स्वागतकर्ता राज्य उसे चरित्रवान और नैतिक समझते रहे। यदि राजनयज्ञ इनमें से किसी एक का भी विश्वास खो देता है तो उसके व्यवसाय तथा उसकी सरकार को आघात पहुँचाता है।

एक राजनयज्ञ का प्रथम कर्तव्य अपने देश की सरकार का सही प्रतिनिधित्व करना है, चाहे उसके व्यक्तिगत विचार कैसे ही क्यों न हों। के. एम. पन्निकर के शब्दों में- "राजनयज्ञ को उस नीति का क्रियान्वित करना होता है जो उसकी सरकार निर्धारित करती है। यह उसकी स्वयं के परामशों से भिन्न हो सकती है.... और किसी भी परिस्थिति में उसे सम्बन्धित सरकार को अपने नेत्र टिमटिमाने के द्वारा भी यह प्रकट नहीं करना चाहिए कि उसके स्वयं के विचार उससे भिन्न नहीं है।"

अतः यह आवश्यक है कि राजनयज्ञ कभी अपनी सरकार के प्रति स्वामि-भक्ति का परित्याग न करे।

(11) राष्ट्रीय हित की प्राप्ति (To achieve National Interest)-एक आदर्श राजनयज्ञ का सर्वोच्च उद्देश्य राष्ट्रीय हित की प्राप्ति है। अतः राजदूत को अपनी सर्वोच्च योग्यता इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लगा देनी चाहिए। उसे स्वागतकर्ता राज्य के विचारों, कार्यों और उसकी पृष्ठभूमि को समझना चाहिए। इटली के राजदूत पी. कारोनी के शब्दों में- "राजनयज्ञ का पर राज्य की आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों की यवासंभव जानकारी होनी चाहिए, और उसे प्रभाव का वह स्तर प्राप्त करने में सफल होना चाहिए जो संभव हो, तथा इस प्रकार प्राप्त किये गये प्रभाव को अपने देश के हितों की सेवा में प्रस्तुत करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि यह सूचना को अच्छे प्रकार ढूंढ़ निकाले और उनके केन्द्रों में प्रभाव की स्थिति के निर्माण करने का प्रयत्न करे, जिनका राष्ट्रीय महत्व हों।"

(12) सामाजिक समारोहों का आयोजन (To arrange Social Functions)-एक राजनयज्ञ न केवल अन्य विदेशी समारोहों में भाग लेता है, वरन् स्वयं भी सामाजिक समारोह करता है और विदेशी राजनीतिज्ञों को आमन्त्रित करता है। औपचारिक अथवा अनौपचारिक दोनों प्रकार के सहभोजों में सम्मिलित होना राजनयज्ञों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। इन अवसरों पर राजनियज्ञ अपने मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करता है। राजनयज्ञ का यह कर्तव्य है कि जिन लोगों से उसको काम पड़ता है उनकी आदतों, इच्छाओं और स्वभावों से वह परिचित रहे तथा उनके पिछले जीवन, ईमानदारी आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करे। यह कार्य प्रीतिभोजों और समारोहों द्वारा ही अच्छी प्रकार सम्पन्न हो सकता है।

(13) अत्यन्त उत्साह का अभाव (Want of much venture)- अत्यन्त उत्साह के लिए वास्तव में राजनयिक का गुण न होकर एक बड़ा दोष सिद्ध होता है। राजनय के आचार्य तालेरौं ने एक नवयुक को यह परामर्श दिया था, "सबसे पहली बात यह है कि अपने उत्साह को अपने वश में रखे।" राजनयज्ञ में भी अत्यधिक उत्साह का अभाव रहना आवश्यक है। यदि वह देशभक्ति के क्षणिक आवेशों से प्रभावित हो जाता है तो वह किसी भी प्रमुख वार्ता में सफल नहीं हो सकता। किसी वार्ता तें सफलता प्राप्त कर अनुभवहीन राजनयज्ञ अत्यन्त उत्साह प्रदर्शित करता है। इससे दूसरे पक्ष वालों में असंतोष बढ़ जाता है और दोषों देशों में रहे-सहे सम्बन्ध टूट जाते हैं।

(14) अच्छा वक्ता एवं भाषाविद् (Good Orator and Linguist)-एक राजनयज्ञ को कुशल वक्ता ओर लेखनी का धनी होना भी आवश्यक है। अपने देश के हितों की उसे वकालत करनी होती है, यदि उसकी भाषा आकर्षक रही तो उसका प्रभाव अधिक होता है। राजनयज्ञ को अच्छा भाषावादी भी होना चाहिए। आधुनिक काल में राजनयज्ञ को अपने देश की भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी तथा स्वागतकर्ता राज्य की भाषा का ज्ञान भी होना चाहिए। सेंटो का मत है कि- "परराज्य भाषा का ज्ञान राजनयज्ञ को लोकप्रिय बना देता है।" राजदूत की सर्वोच्च योग्यता उसका कुशल वक्ता होना आवश्यक है। सैकड़ों वर्ष पूर्व मेगस्थनीज ने कहा था कि - "राजदूत के पास युद्धपोत अथवा भारी पैदल सेना अथवा किले नहीं होते हैं किन्तु उसके पास शस्त्र शब्द और अवसर होते हैं।" स्पष्ट है कि राजनयज्ञ को भाषण के साथ-साथ लेखन कला में भी प्रवीण होना चाहिए।

12. राजनयिक भाषा [DIPLOMATIC LANGUAGE]

1. राजनयिक बातचीत की भाषा पर टिप्पणी लिखिए I (Write a note on Language of Diplomatic Intercourse.)

अथवा

आप राजनयिक भाषा से क्या समझते हैं? राजनयिक भाषा और आम भाषा में क्या अन्तर है? (What do you understand by Diplomatic Language? How is it different from Common Language?)

अथवा

राजनयिक भाषा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दीजिये।

(Describe the brief history of development of Diplomatic Language. Give examples of some diplomatic words with their special meaning.)

उत्तर- राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध प्राचीनकाल से ही स्थापित होते रहे हैं। एक देश के प्रतिनिधि जब दूसरे देश को भेजे जाते थे तो उनको सन्देश भेजने के लिए एक विशिष्ट प्रकार की भाषा का प्रयोग करना होता था। वह भाषा साधारण भाषा से कुछ भिन्न होती थी। उसके अन्दर प्रयुक्त शब्द, वाक्यांश और मुहावरे विशेष अर्थों वाले होते थे। इस प्रकार की भाषा को राजनयिक भाषा कहा जाता था। वह आज भी कुछ विशिष्ट प्रकार की बनी हुई है।

राजनयिक भाषा का अर्थ (Meaning of Diplomatic Language)

राजनयिक व्यवहार में भाषा का इतना महत्त्व है कि कुछ विचारकों ने राजनय की परिभाषा भी इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए की है। सभी राजनयिक सम्पकों में प्रयुक्त किए जाने वाले शब्दों एवं वाक्यांशों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। राजनय की भाषा का एक विशेष रूप होता है। राजनयज्ञों के मध्य जिस विशिष्ट भाषा का प्रयोग होता है, उसे राजनयिक भाषा कहते हैं। राष्ट्रों के मध्य प्राचीन काल से पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखने की प्रथा चली आई है। ये सम्बन्ध बड़ी गुप्त एवं रहस्यमय पद्धति का प्रयोग कर राजनयज्ञ ने बनाये थे। इन सम्बन्धों को स्थापित करने में जिस भाषा का प्रयोग किया गया उसे राजनयिक भाषा (Diplomatic Language) कहा जाता है। इस भाषा में विशिष्ट अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग होता है जिसे आम भाषा जानने वाले विद्वान् नहीं समझ पाते हैं। इसलिए कहा जाता है कि राजनयिक भाषा बड़ी रहस्यमय तथा गोपनीय होती है।

के. एम. पन्निकर के अनुसार- "कई शताब्दियों में से होकर राजनय ने अपनी एक विचित्र भाषा विकसित कर ली है जिसमें साधारण शब्दों को भी विशेष संज्ञाएं दी जाती हैं और इससे रहस्यात्मकता बढ़ जाती है।"

हेरोलड निकलसन ने राजनय भाषा के बारे में कहा है- "इसमें सावधानी और संक्षिप्त रूप से शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप राजनय और मन्त्री लोग एक-दूसरे से अशिष्ट हुए बिना और उकसाहट दिए बिना कटु बातें कह जाते हैं।"

अर्नेस्ट सैटो के शब्दों में- "राजनय की भाषा में बुद्धिमत्ता और चातुर्य की कार्यान्वति होती है और स्वतन्त्र राज्यों की सरकारें अपने सम्बन्धों में ऐसी ही भाषा का प्रयोग करती है।" अगर राज्यों को आपसी स्वस्थ तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने हैं तो यह जरूरी है कि राजनय

पत्र-व्यवहार में कटु भाषा का प्रयोग न किया जाए। पत्र-व्यवहार एवं वार्तालाप में प्रयोग लाई जाने वाली भाषा सरल, सुबोध और शिष्ट होनी चाहिए।

राजनयिक भाषा के विभिन्न अर्थ (Diplomatic Language in different senses) - निकलसन ने राजनयिक भाषा का

प्रयोग तीन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया है। ये **तीन उद्देश्य** निम्नलिखित हैं-

(1) राजनयज्ञ वार्ता और पत्र-व्यवहार में प्रयोग के लिए इस भाषा का प्रयोग होता है, अथवा अन्य शब्दों में यह कहा जाए तो ये वह भाषा जो राजनयिक सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए वार्तालाप में तथा पत्र-व्यवहार में प्रयोग की जाती है उसे राजनयिक भाषा की संज्ञा दी जाती है।

(2) राजनय की विशेष भाषा अथवा वाक्यांश जैसे 'राजनयिक पतंगबाजी' अथवा 'समुद्र गौरव'। राजनयिक जिन विशिष्ट शब्दों, मुहावरों और वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं, उनसे भरी यह भाषा चाहे किसी देश की क्यों न हो, राजनयिक भाषा कहलाती है। ये प्राविधिक शब्दावलियों आज भी परम्परा के अनुसार अनेक शताब्दियों के गुजर जाने के बाद भी ये शब्द राजनयिक भाषा के शब्द कोष में भरे हुये हैं। उदाहरण के लिए ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के कार्यालय के लिए "टेन डाउनिंग स्ट्रीट का प्रयोग किया जाता है तथा 'हाइट हाउस' (White House) अमेरिकन सरकारी कार्यालय के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार क्रेमलिन (Kremlin) का अर्थ रूसी विदेश मन्त्रालय है। इसी प्रकार किसी अभिसमय अथवा सन्धि का गौण उपकरण (Subsidiary Instrument) को प्रोटोकोल (Protocal) नाम से जाना जाता है। ऐसे वाक्यांश राजनायिक शब्दावली का अभिन्न भाग बन चुके हैं।

(3) राजनयिक भाषा का प्रयोग '**न्यून कथन**' के लिए भी होता है। इस 'संक्षिप्त भाषा का अर्थ राजनयज्ञ ही समझ पाते हैं। निकलसन के शब्दों में "इस (भाषा) का प्रयोग उन सावधानीपूर्ण कटूक्तियों के संदर्भ में होता है जिनके माध्यम से राजनयज्ञ तथा मन्त्रीगण तीखी बातों को बिना क्रोध या आवेश का प्रदर्शन किये कह सकते हैं।" इनके माध्यम से राजनयज्ञ बहुत कुछ कह सुन लेते हैं, फिर भी क्रोध, स्पष्ट विरोध एवं अनुचित शब्दों का प्रयोग नहीं हो पाता। उनके द्वारा ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो जन साधारण को बहुत कोमल और शिष्ट दिखाई देते हैं, किन्तु जिनका राजनयिक परम्परा की दृष्टि से अत्यन्त कटु अर्थ निकलता है।

राजनयिक भाषा का इतिहास

(History of Diplomatic Language)

पिछली लगभग चार शताब्दियों के राजनयिक भाषा के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है कि भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का राजनयिक भाषा के रूप में प्रयोग होता रहा है। इसका विस्तार से वर्णन इस प्रकार है-

लैटिन भाषा-प्राचीन राजनय में राजनयज्ञ अपने भावों को व्यक्त करने के लिए लैटिन भाषा का माध्यम प्रयोग करते थे। भारत में जिस प्रकार संस्कृत भाषा समस्त देश में बोली और समझी जाती थी उसी प्रकार लैटिन भाषा का प्रयोग समस्त यूरोप में होता था। लैटिन भाषा का पण्डित प्रत्येक देश में सम्मान पाता था। इसीलिए दो देशों के मध्य वार्ता का माध्यम लैटिन भाषा ही थी। 17वीं शताब्दी तक समझौते, सन्धियों और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क मुख्यतः लैटिन भाषा के माध्यम से होते थे। उदाहरण के तौर पर 1648 की वेस्टफेलिया एवं 1674 की ऑग्ल डच सन्धियों इसी लैटिन भाषा में लिखी गई थीं।

फ्रेंच भाषा-17वीं और 18वीं शताब्दी में ही फ्रेंच भाषा क्रमशः लैटिन की प्राप्त करती जा रही थी। रूस के पीटर महान् ने सभी राजनयिक सम्पकों के माध्यम के रूप में फ्रेंच भाषा को अपनाया। यूरोप की शक्तियों में झांस का प्रभुत्व जब बढ़ने लगा तो फ्रेंच भाषा समस्त यूरोप में पढ़ी तथा समन्नी जाने लगी। फ्रांसीसी अब इस बात पर जोर देने लगे कि फ्रेंच भाषा का राजनय का माध्यम बनाया जाय। 18वीं शताब्दी के मध्य तक फ्रेंच भाषा का प्रयोग सर्वत्र होने लगा। एक्सलशिपेल की कांग्रेस में समस्त कार्यवाही फ्रेंच भाषा में लिखी गई। 1815 को वियना कांग्रेस तथा पेरिस सम्मेलन में पूरी तरह फ्रेंच भाषा राजनय के सिंहासन पर आरूढ़ हो गई। इससे फ्रांसीसी राजनयिक तथा राजनीतिज्ञ अन्य ऐसे राजनयिकों और राजनीतिज्ञों की तुलना में जिनको फ्रांसीसी नहीं आती थी से अधिक लाभप्रद स्थिति में रहते थे। फ्रांसीसी का यह प्रचलन 1918-19 के पेरिस सम्मेलन तक चलता रहा। निकोलसन के मतानुसार- "यूरोप में टिप्पणियां, विक्षप्तियां तथा वार्तालाप का सारा सामाजिक और सरकारी काम -काज फ्रांसीसी भाषा में ही होता या। जार के दिनों में रूसी राजनयिक सेवा के बहुत से सदस्य अपनी सरकार को फ्रांसीसी में ही अपना पत्र-व्यवहार भेजते थे। आज तक भी सारे यूरोप में फ्रांसीसी भाषा को राजनयिक वार्तालाप की भाषा को स्वीकार

करने की एक प्रया बन गई है।"

अंग्रेजी भाषा-ग्रेट ब्रिटेन ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बढ़ाने के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का प्रभाव भी बढ़ाया। इस कार्य में वह काफी सफल हुआ। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा का राजनयिक सम्पर्क के माध्यम के रूप में प्रभाव 19वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। अंग्रेजी भाषा विश्वव्यापी बन गई और 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी भाषा राजनय की भाषा बन गई। 1918-19 की शान्ति सन्धि पूर्ण अंग्रेजी भाषा में ही लिखी गई। वार्ताय की सन्धि में यह बात स्वीकार की गई कि राजनय में फ्रेंच तथा अंग्रेजी दोनों भाषा में समान अधिकार रखेगी। 1945 में अंग्रेजी प्रभाव घटा पर अमेरिका का प्रभाव बढ़ा। अमेरिकन भाषा भी अंग्रेजी भाषा से मिलती-जुलती है। अतः अंग्रेजी भाषा में ही शान्ति सम्मेलन तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाही हुई।

आजकल यह फैशन बन गया है कि प्रत्येक राजनयज्ञ अपने भाषण तथा पत्र-व्यवहार में अपनी राष्ट्रभाषा का प्रयोग करता है। दूसरे देश की भाषा बोलना गुलामी का चिह्न माना जाता है। इसी कारण आज विदेशी वार्ता के समय दुभाषिया होना अनिवार्य हो गया है। भारत में जब चीन का प्रधानमंत्री आता है तो वार्ता दुभाषिये के माध्यम से होती है। परन्तु अब राजनयिक वार्ता दुभाषिये के माध्यम से होने से बड़ी कठिनाई आती है और उसमें काफी देर लगती है। दुभाषिया तत्काल तो अनुवाद ठीक कर सकता है पर देर होने पर अर्थ का अनर्थ कर सकता है। इस समस्या को सुलझाने के लिए विश्व राजनयज्ञ एक कॉमन भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय वार्ता का माध्यम बनाने पर जोर दे रहे हैं।

राजनयिक शब्दावली (Diplomatic Phrases)

राजनयिक भाषा के शब्द-कोष में अनेक ऐसे शब्द विद्यमान हैं जो शताब्दियों पुराने हैं पर उनका प्रयोग राजनय में लगातार होता आया है। ऐसे कुछ शब्द अनेंद्रस्ट सेंटो ने अपनी पुस्तक "ए गाइड टू डिप्लोमैटिक प्रैक्टिस" ("A Guide to Diplomatic Practice") में दिये हैं। इन शब्दों को राजनय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय विधि में भी प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ कुछ अधिक प्रचलित शब्द तथा उनके अर्थ दिये जाते हैं-

(1) सहमिलन (Accession)- अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों में सहमिलन की एक धारा भी जोड़ दी जाती है ताकि सन्धि वार्ता में शामिल न होने वाला राजनय भी बाद में उसमें शामिल हो सके। अन्य शब्दों में जब कोई सन्धि वार्ता कुछ राष्ट्रों के मध्य चल रही हो और किसी कारणवश किसी एक या दो राष्ट्रों के प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित न हो पायें और मूल सन्धि पर उनके हस्ताक्षर न हो पायें तब ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अनुपस्थित राष्ट्र भी उस सन्धि को अंगीकार कर सकते हैं। इसी व्यवस्था को सहमिलन (Assession) कहा जाता है। अर्नेस्ट सातो ने सहमिलन की परिभाषा करते हुए कहा है कि- "सहमिलन एक पुरानी प्रथा है जिसके अनुसार जिस राज्य ने किसी सन्धि पर शुरू में हस्ताक्षर न किये हो उसे बाद में इसका भागी बना लिया जाता है।"

(2) मतैक्यता (Accord)-जब कोई ऐसा विषय जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का होता है परन्तु अधिक महत्व का नहीं होता है, उसे सन्धि द्वारा नहीं वरन् मतैक्य अथवा समझौते द्वारा राष्ट्र स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार की मतैक्यता को अकार्ड (Accord) कहा जाता है। ऐसे विषय होते हैं जन-स्वास्थ्य तथा कापीराइट आदि।

(3) अग्रेविचार (Ad Referendum)-जब कभी कोई राजनयज्ञ किसी सन्धि पर अपनी अन्तिम स्वीकृति न देकर इसे अपनी सरकार की स्वीकृति के लिए रख लेता है तो इसे अग्रेविचार अथवा अनुमोदनार्य (Ad Referendum) कहा जाता है। इस प्रक्रिया से सन्धि की अन्तिम स्वीकृति का अधिकार हाथ में ज जाता है।

(4) अन्ताधिनियम (Acte Final)- अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि वार्ता को जब अन्त में लिखित रूप दिया जाता है तो इस अन्तिम लिखित रूप को अन्ताधिनियम (Acte Final) कहा जाता है।

(5) समनुमोदन (Agreement)-जब एक राज्य द्वारा विदेशों में अपना कूटनीतिज्ञ नियुक्त किया जाता है तो उसके सम्वन्ध में सम्बन्धित राज्य की राय अनधिकृत रूप से जान ली जाती है। यदि विदेशी शासन कोकोई आपत्ति नहीं होती तो सम्बन्धित व्यक्ति को समनुमोदन प्राप्त समझा जाता है।

(6) राजप्रश्रय (Asylum)-जब कोई अपराधी अपनी सरकार से दण्ड पाने के भय से किसी विदेश में भागकर शरण लेता है अथवा किसी विदेशी दूतावास में शरण लेता है तो विदशी सरकार उसे राजप्रश्रय (Asylum) दे सकती है। वह पुनः अपने देश में नहीं लौट सकता है। यह प्रथा ईरान में चलती थी पर अब यह एक अन्तर्राट्रीय प्रथा बन गई है। बहुत समय तक अमेरिका ने इसे नहीं अपनाया था पर अब वह भी इसे अपना चुका है।

(7) दूतावास प्रेस (Bag)-राजनयज्ञ का प्रतिदिन अपने देश में कई सन्देश एवं प्रतिवेदन भेजने होते हैं। इन कागजात को एक विशेष थैले (Bag) में विशेष सन्देशवाहक द्वारा ले जाया जाता है। यह थैला गोपनीय होता है, इसे सम्बन्धित अधिकारियों के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति नहीं खोल सकता।

(8) सहचारी (Attache)-आधुनिक काल में राजनयज्ञों का बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। उनकी सहायता के लिए उनके सहचारी (Attache) नियुक्त किये जाते हैं। उदाहरण के लिए राजनयज्ञ का व्यापारिक कार्यों में सहायता देने के लिए 'व्यावसायिक सहचारी' (Commercial Attache) तथा समाचार-पत्रों में प्रकाशित बातों का अध्ययन करने के लिए प्रेस सहचारी (Press Attache) को नियुक्त किया जाता है। इन सहचारियों को भी विशेष सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

(9) युद्ध संलग्न अधिकार (Belligerent Rights)- जब कोई राज्य किसी घोषित युद्ध में शामिल होता है तो उस राज्य को युद्ध संलग्न राज्य कहते हैं। ऐसे युद्ध संलग्न राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, जिन्हें युद्ध संलग्न अधिकार कहा जाता है। युद्धरत सरकारों को कुछ अधिकार और कर्तव्य प्राप्त होते हैं। इस अधिकार द्वारा ये सरकारें अपने शत्रु के समुद्री तटों एवं बन्दरगाहों का घेरा डाल सकती हैं, नाकेवन्दी कर सकती हैं, या व्यापारिक सम्बन्धों को समाप्त कर सकती हैं। क्रांतिकारी को जब तक 'युद्ध संलग्न अधिकारों से युक्त नहीं किया जाता है, तब तक वे अपने कार्य स्वतन्त्रापूर्वक नहीं कर सकते हैं। गृह-युद्ध की स्थिति में क्रान्तिकारियों को यह अधिकार प्राप्त होते हैं।

(10) समर्पण-सन्धि (Capitulations)-प्राचीन काल में शक्तिशाली ईसाई राज्य गैर-ईसाई राज्यों से सन्धि करते समय एक शर्त यह जोड़ देते थे कि वे अपने राज्य में ईसाइयों को विशेष प्रकार की सुविधायें देंगे। ऐसी शर्त रखने से गैर-ईसाई देशों में बसने वाले ईसाई विशेषाधिकार प्राप्त कर लेते थे। इन विशेषाधिकारों में निम्न अधिकार शामिल थे-

(i) ईसाइयों को स्थानीय न्यायालयों की परम्पराओं से मुक्ति।

(ii) करों और कारागार से मुक्ति।

इस प्रकार की सन्धियों को समर्पण-सन्धि की संज्ञा दी गई। तदनुसार शक्तियों का उपयोग करने वालों को समर्पण शक्तियां कहा जाता था और इस प्रणाली को समर्पण व्यवस्था कहा जाता था।

(11) महामन्त्रालय (Chancelleries and Chancery)- प्रारम्भ में चॉसलर का अर्थ था मन्त्री और उसके कार्यालय को चान्सलरी (Chancellery) कहा जाता था। आजकल इसका अर्थ वे मन्त्री तथा कर्मचारी है जो विदेश नीति को नियन्त्रित करते हैं या उस सम्बन्ध में परामर्श देते हैं। चान्सलर्स का अर्थ राजनयिक के कार्यालय से लिया जाता है जिसमें उसके प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सचिव तथा सहायक होते हैं।

(12) सम्मेलन और कांग्रेस (Conference and Congress)-प्रायः इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची तौर पर प्रयुक्त कर लिया जाता है पर वास्तव में दोनों शब्दों में काफी अन्तर है। कांग्रेस शब्द सम्मेलन की अपेक्षा अधिक व्यापकता का प्रतीक है। अन्यथा दोनों में विशेष अन्तर नहीं है। साधारणतया मित्र देशों के प्रतिनिधियों के एकत्रीकरण को सम्मेलन कहा जाता है और जिस एकत्रीकरण में तटस्थ, विजित और विजेता भी शामिल हो उसे कांग्रेस कहा जाता है।

(13) कार्यदूत (Charge de Affairs)-कार्यदूत का अर्थ है वह राजनयज्ञ जो राजदूत की अनुपस्थिति में राजदूतावास का समस्त कार्य संचालित करता है। कार्यदूतों को राजदूतों के समान सम्मान प्राप्त नहीं होता। अन्तःकालीन कार्यभार सम्भालने के लिए अन्तरिमकालीन कार्यदूत नियुक्त किए जाते हैं। उनकी नियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं कि सम्बन्धित राज्य से उनकी नियुक्ति का अनुमोदन कराया जाए। जब एक राज्य दूसरे राज्य से अपना असन्तोष अथवा रोष प्रकट करता है तो वह लम्बे

समय तक अन्तरिमकालीन कार्यदूत को ही नियुक्त रहने देता है।

(14) राजनयिक निकाय (Diplomatic Corps)-राजनयिक निकाय का तात्पर्य वे सभी राजनयज्ञ हैं जो किसी देश की राजधानी में स्थित हैं। विभिन्न देशों के राजदूतावासों के राजनयिक कर्मचारियों के समस्त समूह को राजनयिक निकाय कहते हैं। इनका मुखिया वरिष्ठतम राजदूत होता है और उसे दूत वरिष्ठ की संज्ञा दी जाती है।

(15) सरकार की ओर से कार्य (Sub Sperati)-कभी-कभी किसी महत्त्वपूर्ण विषय में किस राजनयिक को ऐसी सन्धि करनी पड़ती है जिसके विषय में समय के अभाव के कारण वह अपनी सरकार से परामर्श नहीं कर पाता है। इस सन्धि पर हस्ताक्षर करते समय वह राजनयज्ञ यह विश्वास दिलाता है कि उस सन्धि को उसकी सरकार मान लेगी। यह कार्य सरकार की ओर से कार्य (Sub sperati) कहा जाता है।

(16) युद्ध का कारण (Casus Belli)- जब कोई राज्य किसी दूसरे राज्य के विरुद्ध उत्तेजनात्मक कार्यवाही करे और उसके आधार पर दूसरे राज्यों को युद्ध की घोषणा करने का न्याय संपूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाये तो वह युद्ध का कारण कहलाता है।

(17) प्रत्यय-पत्र (Credentials)- जब कोई राजनयज्ञ अथवा मन्त्री विदेश भेजा जाता है तो प्रेषक राज्य उसे परिचय-पत्र देता है जिसमें उसकी नियुक्ति का उल्लेख होता है तथा प्रेषक देशों के हस्ताक्षर होते हैं। यह परिचय-पत्र या प्रत्यय-पत्र विदेशी राज्याध्यक्ष के सामने प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रत्यय-पत्र के बिना उसे 'राजदूत' की मान्यता नहीं मिलती।

(18) अविप्रतिपत्ति सन्धि (Concordat)-अविप्रतिपत्ति मन्धि वह सन्धि है जो पोप चर्च के हितों की रक्षा करने के लिए दूसरे देशों के साथ करता है। वर्तमान में पोप द्वारा की गई किसी भी प्रकार की सन्धि के लिए 'अविप्रतिपत्ति सन्धि' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(19) अभिसमय (Convention)-यह एक कम महत्त्व की सन्धि होती है जिसे राज्यों के सम्प्रभुओं के बीच सम्पन्न नहीं किया जाता बल्कि शासनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(20) पत्र-प्रेष (Despatch)-कोई राजनयज्ञ अपने देश के विदेश विभाग को जो पत्र आदि भेजता है उसे राजनयिक भाषा में पत्र-प्रेष (Despatch) कहा जाता है।

(21) कार्यानुमति (Exequatur)- इस शब्द का प्रयोग वाणिज्य दूत की नियुक्ति के सम्बन्ध में किया जाता है। वाणिज्यदूत की नियुक्ति हो जाने के पश्चात् जब सम्बन्धित अधिकारी उसे आवश्यक स्वीकृति देता है तो उसी स्वीकृति को 'कार्यानुमति' कहा जाता है।

(22) राजनयिक बीमारी (Diplomatic Illness)-जब कोई राजनयज्ञ किसी सभा अथवा सम्मेलन में नहीं जाना चाहता तो वह बीमारी का बहाना बना लेता है। इस बहाने को ही 'राजनयिक बीमारी' कहा जाता है।

(23) विवाचन-संवित् (Compromis D' Arbritrage of Compromis)-जब दो राज्य अपने किसी विवाद को समझौते के लिए सौंप देते हैं तो इस समझौते की प्रक्रिया का जो नियम-पत्र तैयार किया जाता है उसे विवाचन-संवित् (Compromis D' Arbitrage of Compromis) कहते हैं। (

24) प्रत्यर्पण (Extradition)-यह एक प्रकार की सन्धि होती है जिसके अनुसार दोनों देश वचन देते हैं कि उनके भागे हुए अपराधी यदि दोनों में से किसी देश में शरण लेंगे तो वे उन्हें मूल देश को वापस कर देंगे। प्रत्यर्पण एक राज्य द्वारा अन्य राज्य को उस व्यक्ति का समर्पण है जो उस राज्य के क्षेत्र के भीतर पाया जाए तथा जो अन्य राज्य के प्रदेश के भीतर किसी अपराध करने का दोषी ठहराया गया हो। प्रत्यर्पण का उस राज्य द्वारा जिसके राज्य क्षेत्र में उसने अपराध किया है अथवा अपराध के लिए दोषी सिद्ध किया गया है, अभियुक्त या दोष सिद्ध व्यक्ति को सौंपने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

(25) मध्यस्थता (Good Offices)-जब दो या दो से अधिक राष्ट्रों में कोई संघर्ष उठ खड़ा होता है तो तीसरा अथवा अन्य कोई राष्ट्र उस झगड़े को निपटाने के लिए मध्यस्थता करता है ऐसी स्थिति में तीसरा राज्य दोनों तनावग्रस्त देशों के साथ अपने

अच्छे सम्बन्धों के बल पर समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता है।

(26) स्पष्ट भाषा (En Clair)-यदि कोई राजनयिक तार सांकेतिक भाषा में न भेज कर साधारण भाषा में भेजा जाता है तो इसे स्पष्ट भाषा में भेजा गया तार मानते हैं।

(27) पूर्ण शक्ति (Full Powers)- जब किसी सम्मेलन में भाग लेने वाले राजनयिक प्रतिनिधि का उसकी सरकार द्वारा पूर्ण अधिकार या पूर्ण शक्ति दी जाती है तो वह उस सन्धि आदि पर अपनी सरकार की ओर से हस्ताक्षर कर सकता है।

(28) मुक्त प्रवेश (Laissez Passur)-जब कोई सरकारी अधिकारी राजकीय कार्य से विदेश यात्रा करता है तो वहां का राजदूत वहां के चुंगी अधिकारियों को एक स्वीकृति पत्र देता है ताकि उस यात्री की सीमा प्रवेश के समय तलाशी न ली जाये।

(29) प्रतिवेदक (Rapporteur)-प्रतिवेदक वह व्यक्ति कहा जाता है जिसे किसी सम्मेलन की उपसमिति में कोई प्रस्ताव रखने को चुना जाता है।

(30) विदेशाधिकरण (Protocol)- 'प्रोटोकल' (Protocol) एक यूनानी शब्द है जिसका अर्थ है 'चिपकना'। प्रारम्भ में किसी समझौते के रिकार्ड को विदेशाधिकरण कहा जाता था। यह अभिसमय था। सन्धि से कम औपचारिक था। वर्तमान में अनेक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रसविदाएं इसी रूप में तैयार की जाती हैं।

(31) अभिलाषाएँ (Voeuse)-किसी सम्मेलन में जब कोई सन्धि हो जाती है तब उसमें आदेश पथ प्रदर्शन के लिए जोड़े गये सुझावों को 'अभिलाषाएं' कहते हैं।

(32) एकपक्षीय घोषणा (Unilateral Declaration)-कुछ राज्य कभी-कभी एक सैद्धान्तिक घोषणा द्वारा अपनी नीति की स्थापना करते हैं। इसकी सूचना बाद में अन्य राज्यों को भेजी जाती है। ऐसी घोषणा को एकपक्षीय घोषणा कहा जाता है।

(33) अस्थायी व्यवस्या (Modus Vivendi)-कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा मतभेदों को समाप्त करने के लिए अनेक बार जो स्थायी समझौते कर लिए जाते हैं उन्हें अस्थायी व्यवस्था (Modus Vivendi) कहा जाता है।

(34) डालर राजनय (Dollar Diplomacy)-डालर राजनय धन देकर अपने प्रभुत्व व क्षेत्र को बढ़ाने की नीति है। अमेरिका इसे मानव जाति के कल्याण तथा आर्थिक उत्थान के लिए अपनाने का बहाना बताता है। इसी नीति के बल पर चीन की क्षेत्रीय अखंडता तथा 'पनामा नहर' को सुरक्षित करने का ढोंग रचा गया था।

(35) अमैत्रीपूर्ण कार्य (Unfriendly Act)-जब एक राज्य दूसरे राज्य के कार्य को युद्ध का कारण मानता है तो उस राज्य के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए स्पष्ट कर देता है कि अमुक कार्य अमैत्रीपूर्ण है।

(36) उचित स्थान व्यवस्था (Placement)-किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में राजनयज्ञों के लिए विशेष स्थान की व्यवस्था जब की जाती है तो यह व्यवस्था ही 'उचित स्थान व्यवस्था' (Placement) कहलाती है। (37) सूक्ष्म लेख्य (Process Verbal)-किसी सम्मेलन के सूक्ष्म लेख्य (Minutes) के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। सम्मेलन के सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर हो जाने पर 'सूक्ष्म लेख्य' मान्य होता है।

(38) क्षेत्रगमन (Safe Conduct)-शत्रु राज्य के राज्य क्षेत्र से किसी व्यक्ति को निकले जाने की सुविधा देना क्षेत्र गमन (Safe Conduct) कहा जाता है।

13. अमेरिका के विदेश मंत्रालय का संगठन [ORGANISATION OF THE MINISTRY OF EXTERNAL AFFAIRS IN U.S.A.]

1. अमेरिका के राज्य के विभाग के संगठन की व्याख्या कीजिए। (Describe the organisation of the dpartment of state in U.S.A.)

अथवा

अमेरिकी विदेश मन्त्रालय के संगठन का विस्तार से वर्णन करें। (Explain in detail the Organisation of Ministry of External Affairs in U.S.A.)

अथवा

अमेरिका के राज्य के विभाग के संगठन की व्याख्या कीजिए। (Discuss the Organisation of the Department of state in the U.S.A.)

उत्तर- अमेरिकी विदेश-सेवा की स्थिति (The American Foreign Service)-अमेरिकी विदेश सेवा के शीर्ष पर विदेश सचिव या विदेश मंत्री और राजदूत होते हैं। इनके नीचे विदेश सेवा की तीन श्रेणियाँ हैं-

1. विदेश सेवा अधिकारी (F.S.O.)

2. विदेश सेवा और आरक्षित अधिकारी (F.S.R.)

3. विदेश सेवा स्टाफ अधिकारी तथा कर्मचारी (F.S.S.O. तथा F.S.S.)

विदेश सेवा में स्थानीय कर्मचारियों के रूप में भी भारी संख्या में कर्मचारी कार्य करते हैं जो विदेशों में स्थित विदेश-सेवा पदाधिकारियों की सहायता करते हैं।

राजदूत और मंत्री राजदूत या मंत्री किसी राज्य की राजधानी में मिशन के मुखिया का कार्य करते हैं। वे अपने स्टाफ के सदस्यों को व्यक्तिगत निर्देश देने के लिए उत्तरदायी होते हैं। वे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। किन्तु इनकी पुष्टि सीनेट द्वारा होना आवश्यक है। इनकी नियुक्ति में राष्ट्रपति को पर्याप्त स्वेच्छा का अधिकार रहता है। आजकल प्रायः व्यावसायिक सेवा के व्यक्तियों को राजदूत या मंत्री पद पर नियुक्त किया जाता है। विदेशों में प्रायः सभी अमेरिकी मिशन राजदूत स्तर के हैं। विदेश सेवा अधिकारी-यह विदेश सेवा का कार्य संचालनकारी भाग है। समुद्र पार के मिशनों में अधिकांश महत्त्वपूर्ण कार्य इन अधिकारियों द्वारा संपादित होते हैं। ये एक समूह के रूप में मिशन के अध्यक्ष, राजदूत या मंत्री के स्टाफ होते हैं। इनकी नियुक्त सीनेट के परामर्श पर राष्ट्रपति करता है। इनकी नियुक्ति का आधार लिखित व मौखिक परीक्षाएं होती हैं। इन अधिकारियों के पद का नाम राजदूतावास, वाणिज्य दूतावास और विदेश विभाग में भिन्न-भिन्न हो जाता है। विदेश विभाग में नियुक्त अधिकारी 'विदेश सेवा अधिकारी' के नाम से जाना जाता है।

विदेश-सेवा आरक्षित अधिकारी- 1946 में स्थापित इस नियम के अनुसार योग्यतापूर्ण विशेषज्ञों की अस्थायी नियुक्ति की जाती है। अगस्त 1968 से आरक्षित अधिकारियों को 10 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाने लगा। फिर उन्हें एक वर्ष के लिए सेवा से हटाकर पुनः दस वर्ष के लिए नियुक्त किया जा सकता था। इन अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा न होकर विदेश मंत्री द्वारा की जाती है। इन्हें किसी भी सरकारी अथवा गैर सरकारी क्षेत्र से लिया जा सकता है।

विदेश सेवा स्टाफ तथा अन्य कर्मचारी- विदेश सेवा स्टाफ अधिकारियों एवं अन्य कर्मचारियों में उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य अमेरिकी सेवा वर्ग सम्मिलित हैं। ये मुख्य रूप से प्रशासनिक, वित्तीय सेवा एवं लिपिक वर्ग के कर्मचारी होते हैं। इनकी नियुक्ति विशेष परीक्षा के बिना विदेश मंत्री द्वारा की जाती है। इसका आधार उम्र, योग्यता और अनुभव होता है। इस स्टाफ में 22 से भी अधिक श्रेणियों के कर्मचारी होते हैं। विदेश सेवा कर्मचारियों के अतिरिक्त विदेश मंत्री की स्वीकृति की समुद्र पार के देशों में कुछ लिपिक, व्याख्याकार, स्टेनोग्राफर, अनुवादक, टंकणकर्ता, टेलीफोन आपरेटर और माली आदि की भी नियुक्ति की जाती है।

वाणिज्य दूतावास के अभिकर्ता-प्राचीन काल में वाणिज्य दूतावास के अधीन अनेक बंदरगाह होते थे जहां अमेरिका के जहाज आया-जाया करते थे। ऐसी स्थिति में वाणिज्य दूत को दूसरे बंदरगाहों के लिए अभिकर्ता नियुक्त करने पड़ते थे जिनमें अमेरिकियों को प्राथमिकता दी जाती थी। 1946 के अधिनियम में इन अभिकर्ताओं की नियुक्ति का तो उल्लेख था परन्तु कर्तव्यों का नहीं। यह अभिकर्ता अमेरिकी या विदेशी व्यापारी होता है और व्यस्त बंदरगाह में रहता है। उसका प्रमुख कार्य नियमित वाणिज्य दूतावास के अधिकारियों की सहायता करना है।

विदेश सेवा स्थानीय कर्मचारी-पहले वाणिज्य दूत अधिकारी द्वारा विदेशियों को लिपिक के रूप में नियुक्त किया जाता था। किन्तु वे विशेष कार्य नहीं करते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध तक उन्हें महत्त्वपूर्ण पदों पर लगाया जाता था। 1946 के अधिनियम में ऐसे विदेशियों की नियुक्ति की व्यवस्था थी और इन्हें स्थानीय कहा जाता था। इनसे कर्मचारियों की उपयोगिता स्थानीय रीति-रिवाजों, परिस्थितियों और जनता से परिचय करने में होती थी। इस राजनयिको का कार्य सुगम हो जाता था। इन्हें महत्त्वपूर्ण कार्यों में नहीं लगाया जाता है। इनमें अमेरिका की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती थी। इनका वेतन उस देश के जीवन-स्तर के अनुसार निर्धारित किया जाता है। उन्हें वहां की सभी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।

विदेश सेवा की मनःस्थिति-विदेश सेवा की आलोचना इसकी रूढ़िवादी एवं परम्परावादी होने के कारण की जाती है। नवागंतुक अधिकारी का अधिकांश समय औपचारिकता पूर्ण कार्यों में ही व्यतीत हो जाता है। छोटे स्थानों पर अधिकांश कागजी कार्यवाहियों आजीवन अधिकारी द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। बड़े मिशनों में कागजी कार्य युवा सदस्यों द्वारा किये जाते हैं। बड़े अधिकारियों का अधिकांश समय स्वयं की घटनाओं से सूचित रखने में व्यतीत हो जाता है। अपने सीमित और कृत्रिम वातावरण में कार्य करता हुआ यह शीघ्र ही एक विशेष मनःस्थिति का बन जाता है। उस पर सेवा का मनोविज्ञान छा जाता है।

पदोन्नति की दृष्टि से विदेश सेवा के सदस्य को विशेष मनःस्थिति अपनानी पड़ती है। लम्बे समय तक सेवा में रहने पर ही पदोन्नति होती है। कठिनाई से बचने का अर्थ है कि कोई कर्मचारी किसी प्रश्न पर ऐसा दृष्टिकोण न अपनाएँ की उसे वरिष्ठ अधिकारी द्वारा निरस्त कर दिया जाए। क्षेत्र के कनिष्ठ अधिकारियों के प्रतिवेदन पर वरिष्ठ अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं। युवक अधिकारी पदोन्नति की दृष्टि से प्रतिवेदन का महत्त्व शीघ्र ही समझ जाता है। क्योंकि उसे अपनी सेवा स्थायी करानी होती है। समयानुसार कर्मचारी सिद्धान्तवादी बन जाता है और पहल करने की शक्ति खो देता है।

सेवी वर्ग का एकीकरण- द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अनेक सरकारी अभिकरणों ने अपने प्रतिनिधि समुद्र पार के देशों में भेजे और उनमें से अधिकांश ने अपना कार्य कुशलता से किया। विदेश से बाकी विदेश मंत्रालय को सम्पर्क करना चाहिए और देश तथा अन्य देशों के कार्यालयों के कर्मचारियों में अदला-बदली होनी चाहिए। आजीवन सेवा पूरी तरह समृद्ध तथा प्रतिभाशाली है उसे छोड़ना चाहिए। हूवर आयोग का मत था कि एक मिली-जुली सेवा प्राप्त करने के लिए दोनों सेवी वर्ग सेवाओं का एकीकरण कर देना चाहिए।

अधिकारियों का विशेषीकरण -विदेशी सेवा की मुख्य समस्या सेवी वर्ग का विशेषीकरण है। युवा अधिकारियों को राजनयिक तथा वाणिज्य दूतावास के कार्यों में लगाने से तथा स्थानान्तरण होते रहने से उन्हें अधिक भौगोलिक विशेषीकरण प्राप्त नहीं होता। कुछ क्षेत्रों में भेजे गए उच्च स्तरीय अधिकारियों को उस क्षेत्र का पूर्ण अनुभव होता है किन्तु समस्त सेवा में यह बात नहीं दिखाई देती। एक अधिकारियों को पहले चीन भेजा जाता है फिर उसे लैटिन अमेरिका, जर्मनी और अफ्रीका भेज दिया जाता है तो उसे किसी भी क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त नहीं हो पाती। वह कहीं की भी परिस्थितियों के साथ उचित सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता। इस विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि अमेरिकी विदेश सेवा के सम्मुख अनेक कठिनाइयों उपस्थित हैं।

14. भारतीय विदेश मंत्रालय [ORGANISATION OF THE INDIAN MINISTRY OF EXTERNAL AFFAIRS]

प्रश्न — भारत में विदेश मन्त्रालय के संगठन का वर्णन करें। (Describe the composition of the ministry of

external affairs in India.)

अथवा

भारतीय विदेश मंत्रालय के संगठन का विस्तार से वर्णन करें। (Explain in detail the Organisation of the Indian Ministry of External Affairs.)

अथवा

भारत में विदेश मंत्रालय के संगठन का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिए। (Make a critical study of the composition of the Ministry of External Affairs in India.)

उत्तर- भारतीय विदेश मंत्रालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सन् 1914 तक भारतीय विदेश विभाग ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं अंग्रेजों के गुप्तचर विभाग का एक महत्त्वपूर्ण भाग था। सन् 1914 के बाद यह विभाग विदेश विभाग एवं राजनैतिक विभाग नामक दो विभागों के रूप में परिवर्तित हो गया। ये दोनों विभाग दो अलग-अलग सचिवों के अधीन रखे गये। सन् 1946 की अन्तरिम सरकार के समय इसके दो विभाग विदेशी मामलों एव राष्ट्रमण्डल संबंधों के रूप में कार्य करते थे। इसीलिए सन् 1947 में देश की स्वतंत्रता के बाद यह विदेशी मामले एवं राष्ट्रमण्डल संबंधों के विभाग के रूप में कार्य करने लगे। लंदन स्थित उच्चायोग को भी इसी विभाग के अंतर्गत रखा गया। सन् 1949 में इसके नाम के आगे से 'राष्ट्रमण्डल संबंध' नाम हटा दिया गया और इसे 'विदेश विभाग' का नाम दिया गया। उसके बाद यह आज तक इसी विभाग के नाम से जाना जाता है।

भारतीय विदेश मंत्रालय का संगठन (Organisation of the Indian Ministry)

विदेश मंत्रालय भारत सरकार का एक विशाल मंत्रालय है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व यह मंत्रालय सदैव ही गवर्नर जनरल की देख -रेख में रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब तक पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री रहे तब तक विदेश मंत्रालय उन्हीं के पास रहा। उनके बाद भी इस मंत्रालय के प्रधान सदैव मंत्रिमण्डल के महत्त्वपूर्ण सदस्यों में से ही रहे।

विदेश मंत्री -विदेश मंत्रालय का प्रधान भारत सरकारी केबिनेट के स्तर का एक मंत्री होता है। विदेश मंत्री विदेश नीति के निर्माण, निर्णय प्रक्रिया तथा इसके क्रियान्वयन में उसका प्रमुख हाथ होता है। विदेश मंत्री ही इस बात का निर्णय लेता है कि किस देश के साथ कैसे संबंध हों। उसी के द्वारा व्यापारिक, सांस्कृतिक, सैनिक और राजनीतिक निर्णय लिए जाते हैं। समय-समय पर आयोजित शिखर सम्मेलनों, संयुक्त राष्ट्र संघ व राष्ट्रमण्डल के अधिवेशनों आदि में वही भाग लेता रहता है और वही अपने देश के प्रतिनिधिमण्डल का नेता होता है। अपने विभाग का मार्गदर्शन तथा प्रशासनिक नियंत्रण उसी के हाथों में होता है।

राज्य मंत्री एवं उपमंत्री- विदेश मंत्री की सहायता के लिए राज्य मंत्री एवं उपमंत्री रखे जाते हैं। यद्यपि राज्य मंत्री एवं उपमंत्री की भूमिका निर्णय प्रक्रिया में अधिक नहीं होती, किन्तु मध्यम श्रेणी के राजनीतिज्ञों को उच्च सम्मान देने के लिए होती है।

विदेश सचिव- विदेश मंत्री के बाद महत्त्वपूर्ण भूमिका विदेश सचिव की होती है। विदेश मंत्री को परामर्श देना, मंत्री के स्थान पर वार्ता करना, छोटी-मोटी संधियों पर हस्ताक्षर करना, इसी का उत्तरदायित्व होता है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में सन् 1947 से 1964 तक विदेशमंत्री को अलग से पद न होने के कारण महासचिव में यह सभी शक्तियाँ निहित होती थीं लेकिन सन् 1964 के बाद महासचिव का पद समाप्त कर दिया गया।

वर्तमान में विदेश सचिव के समानान्तर दो अन्य सचिवों-**सचिव (पूर्व) एवं सचिव (आर्थिक संबंध) के** पद की व्यवस्था की गई है। सचिवों के बाद कुछ अतिरिक्त सचिव भी होते हैं। इसी प्रकार उनके बाद वरीयता क्रम से क्रमशः सह-सचिव, डायरेक्टर्स, उपसचिव, अपरसचिव, सहकारियां, शोधकारियों, सहायकों एवं लिपिकों के पद होते हैं।

नवाचार सम्भाग- नवाचार (प्रोटोकॉल) का कार्य राजनय के समान बहुत प्राचीन है। विदेशी राष्ट्राध्यक्षों, प्रधानमंत्रियों, राजदूतों आदि के साथ व्यवहार के नियमों को नयाचार प्रोटोकॉल के नियम कहते हैं। यह नियम निश्चित होते हैं। इस विभाग के अध्यक्ष

का कार्य यह देखना होता है कि विदेशों से आये विशेष व्यक्तियों की आवभगत, स्वागत आदि के शिष्टाचार के नियमों का विधिवत् पालन होना चाहिए।

विभिन्न खण्ड- विदेश कार्यालय का मूल स्वरूप विभिन्न खण्डों में विभाजित होता है। ये खण्ड मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं- **(क) विशिष्ट एवं सहायक खण्ड त**था (ख) **क्षेत्रीय खण्ड**। इन खण्डों का वर्गीकरण स्थायी एवं सीमित नहीं होता, बल्कि समयानुसार इसकी संख्या बदलती रहती है। वर्तमान में विदेश मंत्रालय में 18 विशिष्ट एवं सहायक खण्ड तथा 13 क्षेत्रीय खण्ड हैं।

क्षेत्रीय खण्डों का अपना महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में उस क्षेत्र विशेष को कितना महत्त्व प्राप्त है तथा भारत सरकार का कितना अधिक रुझान उस क्षेत्र विशेष की ओर है। विशिष्ट एवं सहायक खण्डों का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि वह खण्ड किसी प्रकार के कार्य में लगा हुआ है।

विभिन्न विभाग-भारतीय **विदेश मंत्रालय के प्रमुख निम्नलिखित विभाग** हैं-

1. कानूनी एवं संधि विभाग — इस विभाग में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई कानूनी समस्याओं, संधि, अधिकरणों आदि से संबंधित कार्यों को देखा जाता है।

2. ऐतिहासिक विभाग— यह विभाग विदेश मंत्रालय की सहायता के लिए विशेष विषयों पर शोधपत्र तैयार कराता है। इस विभाग का अपना पुस्तकालय है।

3. प्रशासकीय विभाग — वह विभाग कार्यकर्ता वर्ग और सेवा वर्ग आदि के प्रशासन का कार्य करता है। इस विभाग के द्वारा भारतीय दूतावासों और वाणिज्य दूतावासों की प्रशासनिक व्यवस्था की भी देखभाल की जाती है।

4. उत्तरी विभाग- यह विभाग उत्तरी सीमा तथा चीन के साथ संबंधों के बारे में व्यवहार करता है।

5. अमेरिकन संभाग- इस विभाग के द्वारा उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के देशों के बारे में मामलों की देखभाल की जाती है। इसी विभाग के द्वारा विदेशी सहायता से संबंधित कार्यों का भी निरीक्षण किया जाता है।

6. आर्थिक विभाग -यह विभाग आर्थिक और तकनीकी आधार पर विदेशों में भारतीय हितों को देखता है।

7. नीति नियोजन तथा समीक्षा विभाग—विदेश नीतियों का समीक्षात्मक अध्ययन कर बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार भारत की भविष्य की विदेश नीति के संबंध में परामर्श देता है।

8. सुरक्षा एवं संचार विभाग— यह विभाग संचार, सुरक्षा आदि समस्याओं पर विचार करके विदेश विभाग तथा विदेशों में भारतीय दूतावासों को परामर्श देता है।

9. वैदेशिक प्रचार विभाग— विदेश मंत्रालय का एक मुख्य कार्य वैदेशिक प्रचार है। विदेश प्रचार जितना व्यापक और प्रभावपूर्ण होगा, भारतीय राजनियकों का कार्य भी उतना ही सरल बन सकेगा। विदेश प्रचार राजनय का एक अनिवार्य अंग है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य वैदेशिक प्रचार विभाग के द्वारा किया जाता है। यह विभाग विदेशों में भारतीय दृष्टिकोण का प्रचार करने का कार्य करता है। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भी सहायक है। यह विभाग सद्भावना, शिष्टमंडलों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यह विभाग विदेश स्थित मिशनों को अपने-अपने प्रत्यायन के देशों में वहाँ की जनता और वहाँ के प्रचार तंत्र के समक्ष भारत की विदेश नीति के सभी पक्षों को उचित रूप से प्रस्तुत करने के संबंध में सहायता देता है और इसके बारे में उन्हें समूचित पक्षसार भी उपलब्ध कराता है। उन्हें भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं से भी इस तरह अवगत रखा जाता है जिससे कि विदेशी सरकारों और वहाँ के लोगों की भारत के साथ संबंध विकसित और विस्तृत करने में दिलचस्पी पैदा हो। इस विभाग का प्रधान संयुक्त सचिव होता है। संयुक्त सचिव की सहायता के लिए दो निदेशक एक उप-

निदेशक और कई सूचना अधिकारी होते हैं।

10. गुप्तचर विभाग— आधुनिक युग में विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया में गुप्तचर विभाग की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो गई है। विदेशी गुप्तचरों का प्रमुख कार्य विभिन्न देशों से राजनैतिक, सैनिक, सामाजिक एवं आर्थिक जानकारियाँ एकत्रित करने का कार्य विशेष एजेंसियों द्वारा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से एकत्रित की गई सूचनाओं एवं तथ्यों के आधार पर किया जाता है।

भारत के गुप्तचर विभाग में रॉ (Research and Analysis Wing-RAW) की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। गुप्तचर ब्यूरो (Intelligence Bureau) की भूमिका जहाँ देश के अंदरूनी मामलों से संबंधित है वहीं विदेशी मामलों का उत्तरदायित्व भी रों (RAW) को सौंपा गया है। **रॉ की स्थापना 1 अक्टूबर, 1968 में** की गई। यह संस्था प्रत्यक्ष सूचनाएँ एवं अनुसंधान संबंधी जानकारी अपने सम्पकों के आधार पर एकत्रित करती है किन्तु परोक्ष सूचनाएँ अपने बाहरी नेटवर्क के द्वारा इकट्ठा करती है। तत्पश्चात् यह संस्था उन सूचनाओं का मूल्यांकन करती है और इस मूल्यांकन का निर्णय लेने के लिए विषय से संबंध कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के पास भेज देती है। इसका कार्यक्षेत्र वैसे तो सम्पूर्ण विश्व है किन्तु जिन क्षेत्रों से भारत के विशेष हित संबंध हैं वहाँ यह संस्था अधिक मजबूती से कार्य करती है। उदाहरणार्थ यह दक्षिण एशिया संबंधी निर्णयों को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसके अतिरिक्त रॉ निर्णयों के क्रियान्वयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस दृष्टि से इसके कार्यक्रम अत्यधिक विस्तृत होते हैं। इस कार्य के लिए यह उन विशिष्ट लोगों को संलग्न रखती है जो भारतीय विदेश नीति के विशेष पहलुओं को लागू करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते

विभिन्न देशों में दूतावास- **वि**देशों में घटने वाली विभिन्न घटनाओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्राप्त होने वाली मुख्य सूचनाओं को इकट्ठा करने के लिए विदेश मंत्रालय द्वारा विश्व के विभिन्न देशों में दूतावास स्थापित किये गये हैं। ये दूतावास ही भारतीय विदेश नीति को लागू करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राजधानी में स्थिति विदेश मंत्रालय इन मिशनों पर नियंत्रण रखता है और समय-समय पर इनका निरीक्षण भी करता रहता है। विदेश मंत्रालय उनके साथ द्विपक्षीय संचार भी बनाये रखता है। भारत की राजनयिक गतिविधियों के बढ़ने के अनुरूप ही इन मिशनों की संख्या में भी निरन्तर बढ़ोत्तरी होती रहती है। इसी प्रकार की वृद्धि मुख्यालय एवं मिशनों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या से निर्धारित होती है।

भारतीय विदेश सेवा -केवल यह परिवर्तन संख्या के घटने-बढ़ने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका गुणात्मक पहलू भी है। गुणात्मक स्तर पर यह परिवर्तन इन सेवाओं में कार्य कर रहे सदस्यों के चुनाव से स्पष्ट होता है क्योंकि आजकल यह चुनाव प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से किया जाता है। इन सेवा परीक्षाओं चुनाव के बाद 'विदेश सेवा प्रशिक्षण संस्थान' द्वारा गहन-गम्भीर पाठ्यक्रमों द्वारा उन्हें विदेश नीति के क्रियान्वयन के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराया जाता है। इसके अतिरिक्त इस संस्थान में चलाये जा रहे विभिन्न भाषा संबंध कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें कई विदेशी भाषाएँ भी सिखाई जाती हैं। भाषा संबंधी यह प्रशिक्षण सन् 1991 से चलाया जा रहा है।

भारतीय विदेश मंत्रालय के कार्य- भारत के विदेश नीति से संबंध विदेश मंत्रालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सही अर्थों में यही विभाग विदेश नीति निर्माण प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। विदेश मंत्रालय को छोड़कर विदेश नीति निर्माण में अन्य संगठनों की भूमिका होती अवश्य है किन्तु यह भूमिका अप्रत्यक्ष एवं अदृश्य होती है। अतः विदेश नीति निर्माण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व विदेश मंत्रालय पर ही होता है। बंधोपाध्याय के मतानुसार विदेश मंत्रालय अपने क्षेत्रीय खण्डों तथा विदेशों में स्थापित विभिन्न दूतावासों व उच्चायोगों के माध्यम से देश के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सैनिक आदि राजनयिक कार्यों का संचालन करता है। इसके अतिरिक्त मंत्रालय को बाह्य प्रचार, गुप्तचर, नीतिगत एवं व्यक्तिगत योजना एवं विभिन्न खण्डों से संबंधित समन्वयकारी कार्यों का सम्पादन भी करना पड़ता है। विदेशों से संबंधित भारत सरकार के जितने भी कार्य हैं, उन सबका नियमित निर्वाह इसी मंत्रालय के द्वारा किया जाता है। अन्य देशों से शत्रुता, मित्रता अथवा तटस्थता के संबंध स्थापित करने के निर्णय भी इसी मंत्रालय में लिए जाते हैं। भारतीय राजनय को कुशल और प्रभावी बनाने का मुख्य उत्तरदायित्व भारतीय विदेश मंत्रालय का है।

निष्कर्ष-भारतीय विदेश मंत्रालय के संगठन और कार्य का अध्ययन यह बतलाता है कि इस मंत्रालय की वैदेशिक संबंधों के संचालन में अहम् भूमिका है। वर्तमान में इस मंत्रालय की स्थिति बहुत उपयोगी एवं सम्मानजनक बनी हुई है। विदेश मंत्रालय को सम्मान व प्रतिष्ठा के साथ देश में देखा जाता है। देश के किसी भी राजनीतिक दल द्वारा विदेश मंत्रालय के विस्तार एवं

विकास का कभी भी विरोध नहीं किया गया है, साथ ही इस मंत्रालय के विरुद्ध कभी भी कोई गम्भीर आरोप नहीं लगाये गये हैं।

16. आधुनिक राजनय में प्रचार [PROPAGANDA IN MODERN DIPLOMACY]

1. प्रचार की परिभाषा दें। आधुनिक राजनय में प्रचार की भूमिका का वर्णन करें। (Define Propaganda. Discuss the role of Propaganda in Modern Diplomacy.)

उत्तर- वर्तमान लोकतान्त्रिक युग में प्रचार का विशिष्ट महत्व है। प्रचार द्वारा राष्ट्रीय हित के अन्य साधनों, जैसे कूटनीति, साम्राज्यवाद आदि का अधिक निपुणता से क्रियान्वयन होता है। प्रचार द्वारा विश्व समाज में कई देश अपनी उच्च प्रतिष्ठा बना सकते हैं और अपनी नीतियों के प्रति दूसरे देशों की सक्रिय सद्भावना प्राप्त कर सकते हैं।

वर्तमान युग में प्रचार की कला से राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि करने वाले राज्यों में जर्मनी, इटली और पूर्व सोवियत संघ के नाम उल्लेखनीय हैं। जर्मनी में हिटलर के समय में प्रचार की तकनीक पर उच्चतम विकास हुआ। हिटलर ने प्रचार के माध्यम से अपने देशवासियों को नाजी विचारधारा का समर्थक बनाया तथा इसके साथ ही विदेशों में ऐसा प्रचार किया कि ग्रेट ब्रिटेन जैसे देश जर्मनी द्वारा वार्साय की सन्धि की व्यवस्थाओं की धज्जियां उड़ाने को शांतभाव से देखते रहे और उन्होंने इसका कोई शसक्त विरोध नहीं किया। कुछ अंशों में यह हिटलर के जादू का प्रभाव था कि कुछ अन्य देश उसकी मांगों को न्यायोचित समझने लगे। द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त अमेरिका तथा सोवियत रूस सम्पूर्ण विश्व में अपनी विचारधारा का प्रचार करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील और कटिबद्ध रहे हैं।

प्रचार -अर्थ एवं परिभाषा (Propaganda-Meaning and Definition)

अन्तर्राट्रीय राजनीति के बढ़ते हुए क्षेत्र के कारण प्रचार का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। प्रचार एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा राष्ट्रों की नीतियों और निर्णयों को अपनी योजना के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। प्रचार राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार का भी प्रमुख साधन है। राष्ट्रीय हितों के साधन के रूप में भी प्रचार एक बहुत ही प्रभावशाली शस्त्र है। यह कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र की शक्ति उसके प्रचार की शक्ति से नजदीकी के साथ जुड़ी हुई है। आज के प्रजातन्त्र के युग में प्रचार का और भी अधिक महत्त्व है क्योंकि इसमें किसी अन्य राष्ट्र के केवल कुछ वर्ग को ही प्रभावित करना पर्याप्त नहीं है बल्कि पूरे समाज को ही प्रभावित करना होता है। वाणिज्य के क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्रों में बढ़ते सम्बन्धों ने भी प्रचार के महत्त्व को बढ़ाया है (वैज्ञानिक, तकनीकी और सूचना प्रौद्योगिक के विकास के कारण प्रचार की विधियों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। आजकल सभी देशों के द्वारा अन्य देशों खासतौर से विरोधी देशों की जनता को प्रचार के माध्यम से अपने पक्ष में करने का प्रयास किया जाता है। आजकल मीडिया एक सशक्त साघन है जिससे विश्व जनमत प्रभावित होता है।)

प्रचार शब्द का अर्थ उन कार्यों से लगाया जाता है जो दूसरे व्यक्ति को अपना पक्ष समझने तथा उनके आचरण बदलने के लिए किये जाते हैं। 'प्रचार शब्द' की परिभाषाएँ उतनी ही व्यापक हैं जितनी कि इस विषय पर पुस्तकें और लेख लिखे गए हैं (प्रचार का अर्थ, सामान्यतः उन कार्यों से लिया जाता है। जो दूसरे व्यक्ति का अपना उद्देश्य समझाने तथा तदनुकूल आचरण कराने के लिए किये जाते हैं) प्रचार वह कला है जिसके माध्यम से एक राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि के लिए लोकमत के मस्तिष्क को प्रभावित करता है।

जोसेफ फॅकल के शब्दों में "प्रचार" का अर्थ सामान्यतः ऐसे व्यवस्थित प्रयास से होता है, जो किसी उद्देश्य के लिए एक प्रदत्त समूह के मस्तिष्क की भावनाओं तथा क्रियाओं को प्रभावित करने के लिए किया जाता है।

पामर तथा पर्किस के अनुसार- प्रचार नैतिक रूप से निष्पक्ष होता है वह जिस तरह अच्छे उद्देश्य के लिए लोगों को फुसला

सकता है उसी तरह बुरे उद्देश्यों के लिए कर सकता है इसलिए नैतिक निर्णय प्रचार पर 'न दिया जाकर फुसलाने वाले उद्देश्यों पर दिया जाना चाहिए।"

चार्ल्स बर्ड के विचार में- "प्रचार का अर्थ एक बड़े जनसमूह पर सुनियोजित एवं व्यवस्थित रूप में सुझावों का प्रयोग करना है ताकि लोगों के दृष्टिकोणों पर नियन्त्रण किया जा सके और उनसे मनमाना आचरण कराया जा सके।"

पैडलफोर्ड तथा लिंकन के अनुसार- "प्रचार किसी विशिष्ट रूप से व्यक्ति के विचारों, आचार-व्यवहार या व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्यों से प्रतीकों का जानबूझ कर किया गया परिचालन होता है।"

ऊपर दी गई परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि प्रचार एक ऐसा उपकरण है जिससे दूसरों के व्यवहार में मनचाहा परिवर्तन लाया जा सकता है। यह ऐसी व्यवस्थित तथा सुनियोजित सूचना के प्रयोग से इस तरह का परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है जो उस व्यक्ति को दी जाती है जिसके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना होता है) प्रचार शब्द के साथ ही उसकी बुराई का संकेत मिलता है, क्योंकि यह अक्सर सत्य, तर्क, योग्यता वास्तविकता आदि को तोड़-मरोड़ कर भी रखता है। इसकी इस कमी के बावजूद आज यह अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का अपरिहार्य अंग बन गया है। कोई भी राज्य उसकी उपेक्षा कर अपनी हानि करता है। वास्तविकता तो यह है कि यह उतना ही अच्छा अथवा बुरा है जितना और जैसा इसका उपयोग किया जाये।

प्रचार एवं राजनय (Propaganda and Diplomacy)-प्रचार और राजनय का बहुत निकट का सम्बन्ध है। राजनय अपने में एक उद्देश्य है परन्तु प्रचार एक साधन मात्र है। आधुनिक प्रचार का युग है। यह राजनय का एक उपयोगी शस्त्र है, जिसका दूतावास खुलकर प्रयोग करते हैं। जार्ज एलन के शब्दों में 'प्रचार राजनय का एक चेतन शस्त्र बन गया है।' इसका प्रयोग न केवल आन्तरिक तथा बाहरी जगत् को बल्कि राजनेताओं और राजनयिक अभिकर्ताओं के विचारों को भी प्रभावित करने के लिए किया जाता है। अतः स्वाभाविक है कि राज्य इसका अधिकाधिक प्रयोग करें। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक बार पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा था कि प्रचार सामग्री का समाचार-पत्रों में एक तथ्य के रूप में नहीं छापा जाना चाहिए। तथ्यों तथा प्रचार-सामग्री में अन्तर होता है। प्रचार के लिए तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रीय हित के अनुसार एक देश का राजनय जब अपने मित्रों और शत्रुओं का चयन करता है तो प्रचार-यंत्र उसका मुख्य सहायक बनता है। इसके माध्यम से मित्र राज्य के प्रति सद्भावनाएं व्यक्त करने तथा शत्रु राज्य के प्रति विष उगलने में सुविधा रहती है।

राष्ट्रों के मध्य शक्ति संघर्ष, एशिया-अफ्रीका के राष्ट्रों की बढ़ती जन आकांक्षाओं, साम्यवाद के उदय और उसके बढ़ते प्रभाव आदि के कारण राजनय और प्रचार के क्षितिज निश्चित ही विस्तृत हो गये हैं परन्तु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संचार साधनों के क्रांतिकारी परिवर्तनों के कारण तो प्रचार सभी देशों की विदेश नीति का प्रधान शस्त्र ही बन गया है। राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक युद्ध के प्रधान शस्त्र के रूप में प्रचार का उपयोग राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में विशेष रूप से किया जा रहा है। इसके द्वारा राज्य अपना दृष्टिकोण रखने अथवा विरोधी दृष्टिकोण को काटने के लिए प्रयास करते हैं जिससे जनता एक निश्चित तरीके से सोचने और कार्य करने को प्रवृत्त हो। इस प्रकार प्रचार के माध्यम से जनता की विचार एवं कार्य-शक्तियों को एक निश्चित मोड़ दिया जाता है। मित्र बनाने, बढ़ाने और बनाए रखने के लिए प्रचार साधन को अपनाया जाता है। दूसरे राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढ़ाने में प्रचार-यन्त्र राजनयज्ञ की कदम-कदम पर सहायता करता है। प्रचारकर्ता द्वारा मित्रों अथवा सम्भावित मित्रों के छोटे कार्यों को भी बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है और उनके गलत कार्यों की ओर से आंख बन्द कर ली जाती है अथवा उनकी व्याख्या तोड़-मरोड़ कर की जाती है। इस प्रकार प्रचार द्वारा राजनयज्ञ का कार्य सरल बन जाता है। जब किसी देश के साथ कोई सन्धि करनी हो तो पहले प्रचार के माध्यम ते उचित वातावरण तैयार किया जाता है। यदि उचित वातावरण तैयार न किया हो तो कोई सन्धि अथवा समझौता सम्भव नहीं हो सकता।

राजनय के पुराने काल में यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि कोई राजा अथवा राजदूत स्वीकारी राज्य की जनता से प्रत्यक्ष अपील कर उसका समर्थन प्राप्त करें अथवा उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित करें। प्रचार को हीन दृष्टि से देखा जाता था। राजनय के प्रारम्भिक काल की यह मान्यता कि राजा और उसके निकट परामर्शदाताओं के साथ सम्पर्क ही ययेष्ट है, आज प्रजातांत्रिक व्यवस्था में समाप्त हो गई है। आज संचार-साधनों द्वारा बड़े जन-समूह के स्थान की दूरी होते हुए भी एक साथ सम्बोधित किया जा सकता है। रेडियो, टेलीविजन आदि ने विश्व के सभी देशों को बहुत निकट ला दिया है। इन साधनों द्वारा एक मित्र अथवा शत्रु राज्य की न केवल सरकार को बल्कि वहां की जनता को भी सम्बोधित एवं प्रभावित किया जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध

के समय नाजी जर्मनी ने शत्रु राज्यों की जनता को प्रभावित करने के लिए अनेक नए तरीकों का आविष्कार किया था।

फ्रांस और अमेरिका की राज्य-क्रांति तथा प्रजातान्त्रिक युग ने जनता के महत्त्व को बढ़ाया है। आज दूतावासों का प्रयास विशेष रूप से जनता को प्रभावित करना रहता है। इसके लिए हर राज्य अपने दूतावासों में सूचना और प्रसारण विभाग रखता है जिनका प्रचार-व्यय लगातार बढ़ रहा है। प्रेस सहचारी भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनोविज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार राजनय के सहायक हैं। वास्तव में प्रचार रूपी यन्त्र के सहारे कूटनीति कई बातें व्यक्त करती है जिनमें कुछ का उद्देश्य अपने देश और अपने मित्र राज्य की जनता के मनोबल को ऊँचा उठाना होता है, कुछ का उद्देश्य शत्रु राज्य की जनता के मनोबल को गिराना होता है, कुछ का उद्देश्य विश्व के दूसरे देशों को भुलाये में डालकर उनकी सहानुभूति अर्जित करना होता है तथा कुठ का उद्देश्य सत्य बात को सामने रखकर अपना पक्ष मजबूत बनाना होता है।

हम 'सशस्त्र शान्ति' (Armed Peace) के युग में रह रहे हैं। सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था प्रचार के प्रभाव से ग्रस्त है, अतः इसके माध्यम से वह विरोधी पक्ष में मतभेद अथवा क्रान्ति उत्पन्न कर सकती है, उन राज्यों की मित्रता प्राप्त कर सकती है जो अभी तक तटस्थ थे, और वे जो मित्र हैं उनकी मित्रता को और भी घनिष्ट बना सकती है। इस प्रकार प्रतिकूल प्रभाव को रोकना और अनुकूल प्रभाव को बढ़ावा देना, प्रचार का मूल कार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रायः सभी विचार कूटनीति में प्रचार के महत्त्व के सम्बन्ध में एक मत हैं। हँस. जे. मार्गेन्थो ने प्रचार को मनोवैज्ञानिक युद्ध की स्थिति माना है। उनके मतानुसार "मनोवैज्ञानिक युद्ध अववा प्रचार राजनय तथा सैन्य बल के साथ तृतीय शक्ति के रूप में संयुक्त होता है जिसके द्वारा विदेश नीति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयत्न करती है।" आज प्रचार राजनय का अभिन्न अंग बन गया है।

प्रचार का लक्ष्य अपने पक्ष को दृढ़ता प्रदान करना होता है। प्रत्येक देश की विदेश नीति का यह मुख्य लक्ष्य रहता है कि विरोधी के विचारों को परिवर्तित कर अपने राष्ट्रीय हित की पूर्ति की जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राजनय का उपयोग करते हुए कभी तो एक राज्य दूसरे राज्य को आश्वासन देता है और कभी उसे चुनौतियों देता है। प्रचार के माध्यम से प्रत्येक राज्य अपने राष्ट्रीय हित के अनुकूल विश्वास पैदा करने, नैतिक मूल्यों का विकास करने, भावानात्मक प्राथमिकताओं को उभारने तथा लोगों के मस्तिष्कों को बदलने का प्रयास करता है।

शान्तिकाल और युद्धकाल में प्रचार का राजनय (Diplomacy of Propaganda during Peace and War)। -मूलतः सभी प्रचार सम्बन्धी कार्य राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर किए जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रचार का उपयोग शांतिकालीन अथवा युद्धकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। शांतिकाल में प्रचार का उपयोग दो परिस्थितियों में किया जाता है... एक तो वार्ता के पूर्व वातावरण की तैयारी के लिए जिससे कि परिस्थिति उसके पक्ष में हो, और दूसरे वार्ता के दौरान। सभी राज्य सामान्यतः प्रचार का उपयोग अपने पक्ष को दूसरों के समक्ष रखने के लिए करते हैं। शांतिकाल में प्रचार के राजनय का उद्देश्य अन्तरर्राष्ट्रीय समझौतों में मनचाही शर्ते स्वीकार कराने के लिए किया जाता है। एक राज्य अपनी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों पर स्वदेश और विदेश के जनमत का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रचार करता है। शांतिकाल में एक देश अपनी विचारधारा को दूसरे देश में फैलाने के लिए भी प्रचार यन्त्र को सक्रिय करता है। विचारधारा की एक रूपता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और मैत्री की भावनाएँ विकसित होती हैं। प्रचार का महत्त्व युद्ध से पूर्व एवं युद्ध के दौरान बहुत बढ़ जाता है। शांतिकाल की भांति संकटकाल और युद्धकाल में भी प्रचार द्वारा विभिन्न तरीके अपनाकर राष्ट्रीय हित की साधना की जाती है। राजनय और युद्ध के बीच जो संघर्षपूर्ण स्थिति रहती है उसमें वे देशों के बीच बड़े कटुतापूर्ण सम्बन्ध रहते हैं। दोनों पक्षों की ओर रसे एक-दूसरे पर विष वमन किया जाता है तथा दूसरों को गलत ठहरा कर अपनी नीति का औचित्य प्रस्तुत किया जाता है। इस स्थिति को राजनीतिक युद्ध की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक राज्य के सामने ऐसे अवसर आते हैं जबकि वह दूसरे राज्यों पर प्रभाव डाल सके। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। इन अवसरों पर प्रचार का सहारा लिया जाता है। प्रचार द्वारा कभी-कभी राजनीतिक युद्ध (Poltical Warfare) की स्थिति पैदा कर दी जाती है परन्तु जैसा कि पामर तथा पार्किंस का कहना है, इन दोनों के बीच अभिन्नता का स्म्बन्ध नहीं है। प्रचार का प्रयोग करने पर आवश्यक नहीं है कि राजनीतिक युद्ध (Political Warfare) की स्थिति पैदा हो जाए, राजनीतिक युद्ध प्रचार का रूप ले भी सकता है और नहीं भी ले सकता है, दोनों ही बातें सम्भव हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का इतिहास बतलाता है कि प्रचार के माध्यम से युद्ध के परिणामों को भी बदला जा सकता है। युद्धकालीन परिस्थितियों में प्रो. शर्मा ने प्रचार के चार उद्देश्य बताए हैं

(1) हम नेक और सदाचारी हैं, शत्रुदुष्ट और चरित्रहीन (We are virtuos, the foe is vicious)

(2) हम शक्तिशाली हैं, शत्रु कमजोर हैं, अथवा हम कमजोर हैं, शत्रु शक्तिशाली है (We are strong the foe is weak or we are weak, the foe is strong)

(3) हम संगठित हैं, शत्रु विभक्त है (We are united, the foe is divided), और

(4) हम विजयी होंगे, शत्रु हारेगा (We shall win, the foe will lose)

प्रचार के उद्देश्य, विधियाँ एवं उपकरण (Aims, Methods and Instruments of Diplomacy Propaganda)

2. राजनय प्रचार के उद्देश्यों, विधियों और उपकरणों का वर्णन करें। (Explain the aims, methods and means of Propaganda.)

उत्तर- प्रचार के उद्देश्य (The Objects of Propaganda)- प्रचार का कोई भी रूप हो, कोई भी साघन हो उसका प्रमुख उपयोग राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करना होता है। पैडलफाई तथा लिंकन के अनुसार- "प्रचार का रूप चाहे कुछ भी हो अथवा इसमें किसी भी तकनीकी को अपनाया गया हो, इसका मुख्य उद्देश्य नीति और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति होता है।"

प्रचार के उद्देश्यों को हम निम्न तरीकों से समझ सकते हैं-

(1) प्रचार के माध्यम से विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में राष्ट्रीय हितों को निश्चित करना।

(2) किसी मतभेद के विषय पर होने वाली वार्ता व सम्मेलन बुलाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए प्रचार माध्यमों का सहारा लिया जाता है।

(3) प्रचार के द्वारा अपनी विचारधारा को अन्य राष्ट्रों में लोकप्रिय व स्वीकारणीय बनाना।

(4) अपनी नीतियों को जो कि राष्ट्रीय हितों पर आधारित हों अन्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकार करवाने के लिए अन्य राष्ट्रों के व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन करना।

(5) युद्धकाल में प्रचार के द्वारा दुश्मन की एक निश्चित मनोवैज्ञानिक स्थिति बनाना। आधुनिक समय में ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रचार उपकरणों का प्रयोग व उपयोग एक आवश्यक स्थिति है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रचार उपकरण का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

प्रचार की विधियाँ (Methods and Techniques of Propaganda)-दूसरे राष्ट्रों के व्यवहार तथा चिन्तन में वांछित परिवर्तन लाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रचार करने वाले राष्ट्र द्वारा बहुत-सी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। पामर तथा पर्किस ने इन्हें निम्नलिखित चार शीर्षकों में विभाजित किया है-

(1) प्रस्तुत करने की विधियों (Methods of Presentation)

(2) ध्यानाकर्षण करने की प्रविधियों (Techniques for Gaining Attention)

(3) अनुक्रिया प्राप्त करने की युक्तियों (Devices for Gaining Response)

(4) स्वीकृति प्राप्त करने के साधन (Methods of Gaining Acceptance)

1. प्रस्तुत करने की विधियाँ (Methods of Presentation)—किसी भी समय पर प्रचारकर्ता अपने विचार इस ढंग से

प्रस्तुत करता है कि केवल उसका पक्ष प्रस्तुत हो। वह अपनी बात को ऐसे प्रस्तुत नहीं करता जिससे दोनों पक्ष स्पष्ट हों। उसकी भूमिका एक वकील के उस तरीके से मिलती-जुलती है जो बड़ी सावधानी से अपने तकों को इस समय संगठित करता है जिनसे मुकदमे का एक पक्ष प्रमाणित होता है। वह उन तथ्यों को अपने तकों से निकाल देता है जिनसे पक्ष को हानि पहुंचती है। अब्राहम लिंकन जिन दिनों वकालत करते थे, उन दिनों न्यायाधीश ने उनके तर्कों पर आपत्ति करते हुए लिंकन से कहा कि इस मुकदमे में आज जो तर्क दिये जा रहे हैं वे आपके द्वारा ही अन्य मुकदमे में कल दिए गए तकों के विरुद्ध हैं। इसका उत्तर देते हुए लिंकन ने कहा कि हो सकता है कि मैंने कल जो तर्क दिए ये गलत हों परन्तु मेरे आज के तर्क पूर्णतः ठीक हैं। कभी-कभी प्रचारक जान-बूझकर झूठ बोलता है अथवा अपने तर्क के लक्ष्य के लिए जाली दस्तावेज भी तैयार करता है। हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया को हड़पने का संकल्प लिया तो उसने अपने लक्ष्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि वह चेकोस्लोवाकिया के केवल उन्हीं क्षेत्रों को प्राप्त करना चाहता है जिनमें जर्मन भाषा-भाषी स्यूडेटन लोग बसे हुए हैं। यह मांग आत्मनिर्णय के उस सिद्धान्त के आधार पर की गई थी जो लोकतंत्र का एक मौलिक सिद्धान्त था तथा जिसमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस आदि पश्चिमी प्रजातन्त्र पूरी आस्था रखते थे। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के सत्तारूढ़ दल ने 1924 में रूस को बदनाम करने के लिए एक जाली पत्र तैयार किया। जिसे जिनोविव पत्र (Jenovive Letter) के नाम से जाना जाता है। कश्मीर समस्या पर पाकिस्तान अपने तर्क हमेशा तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। पाकिस्तान लगातार यही प्रचार करता रहा है कि कश्मीर पाकिस्तान का अंग है क्योंकि वहां की अधिकांश जनता मुसलमान है। बिस्मार्क तथा हिटलर ने कई बार अपने उद्देश्यों को बड़ी सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार के प्रचार के कई रूप हो सकते हैं, उदाहरण के लिए-

(1) इस विधि में प्रचारकर्ता देश किसी समस्या को प्रस्तुत करते समय उसका पूरा विवरण नहीं देता। वह उसी पक्ष को अखबार, प्रेस व मीडिया के अन्य माध्यमों से प्रकट करता है जो उसके हित में होता है।

(2) प्रचार में ऐसी घटनाओं एवं प्रमाणों का अपने पक्ष के समर्थन में उपयोग किया जा सकता है कि जिनका उद्देश्य कुछ और ही होता है, किन्तु आप उनसे अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। हिटलर यहूदियों के विरुद्ध जर्मनी में रोष भड़काना चाहता था। उसने अनेकों मनगढ़न्त कहानियों तथा पुस्तकें प्रस्तुत कीं और उनके आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा किये की यहूदी लोग पूरे विश्व पर राज्य करने की योजना बना रहे हैं। इस प्रचार का तत्काल परिणाम हुआ और यहूदियों के प्रति जर्मनी में क्रोधाग्नि भड़क उठी।

(3) प्रचार करते समय झूठ और धोखे का मार्ग सर्वाधिकारवादी और लोकतान्त्रिक दोनों ही राज्यों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है किन्तु दोनों व्यवस्थाओं द्वारा किए जाने वाला ऐसा प्रचार एक ही कोटि में रखा जा सकता है। दोनों के बीच उद्देश्य का अन्तर रहता है। प्रजातान्त्रिक देशों का ऐसा प्रचार तानाशाही देशों की तुलना में प्रायः अच्छे उद्देश्यों के लिए किया जाता है। वैसे अपवाद तो प्रत्येक पद्धति में मिल ही जाते हैं।

(4) यह आवश्यक नहीं कि प्रचार निश्चित रूप से झूठ तथा धोखे पर ही आधारित हो। यह अपने उद्देश्यों को उचित सिद्ध करने के लिए सच्चाई अर्थात् उचित तथ्यों का सहारा भी ले सकता है। चर्चित के मशहूर "रक्त, पसीना तथा आंसुओं" वाले भाषण में आने वाले संघर्ष की वास्तविक तस्वीर थी तथा वे दूसरे युद्ध में लोगों को उच्चतम बलिदान तथा महान् संघर्ष के लिए प्रेरित करने में सफल भी रहे।

(5) कभी-कभी प्रचारकर्ता नीतियों का प्रस्तुतिकरण इस ढंग से करता है जो लोगों के मनोबल में वृद्धि कर दे तथा वह किसी भी चीज में जिसकी प्रचारकर्ता में इच्छा हो भागीदार बनने के लिए तैयार हो जाते हैं।

(6) दूसरे राष्ट्रों की नीतियों का प्रचारकर्ता इस ढंग से प्रस्तुतीकरण कर जिसमें लोग स्थिति की गम्भीरता के बारे में मान लें तथा आने वाले संकट के लिए तैयार हो जाएं।

2. ध्यानाकर्षण करने की प्रविधियाँ (Techniques for Gaining Attention)- अपने उद्देश्यों को निश्चित करने के बाद प्रचारक अपने प्रति सम्बद्ध देशों के लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। इसके लिए कई ततरीके अपनाए जाते हैं। ध्यानाकर्षण विधि के प्रमुख रूप ये हो सकते हैं-

(1) सरकारी प्रयत्न (Official Devices)-दूसरे देश की सरकार के लिए समय-समय पर नोट्स (Notes) भेजे जाते हैं, विरोध प्रकट किया जाता है और राजनीतिज्ञों तथा नेताओं के भाषणों का हवाला दिया जाता है।

(2) शक्ति प्रदर्शन (Power Demonstration)-अपनी मांगों तथा हितों की ओर दूसरे देशों का ध्यान आकर्षित करने का दूसरा तरीका यह भी है कि कोई राष्ट्र अपनी सामरिक शक्ति बढ़ा ले तथा उसका प्रदर्शन करता फिरे। जल, थल, नभ सेना की पूरी तैयारी करने पर उस देश की और विश्व शंका की दृष्टि से देखने लगेगा।

(3) सांस्कृतिक कार्यक्रम (Cultural Programme)-सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा दूसरे राष्ट्रों की जनता को अपने पक्ष में प्रभावित किया जा सकता है। विभिन्न देशों में अपने दूतावासों द्वारा यह प्रवन्ध किया जाता है कि विभिन्न तरीकों से अपने देश की संस्कृति, रहन-सहन, साहित्य, परम्पराओं आदि से विदेशियों को परिचित कराया जाए तथा उन पर अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता का दबदबा जमाया जाए।

(4) राजनीतिक दौरे (Political Visits)- राजनेताओं तथा नेताओं के आगमन तथा विदेशों में भेजे जाने वाले विशिष्ट राजदूत, प्रतिनिधि आदि भी इच्छित नीतियों तथा भ्रमण कार्यों के लिए समर्थन प्राप्त करने के लिए अवसर के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

(5) रचनात्मक कार्यक्रम (Constructive Programmes)-रचनात्मक नीतियों तथा ठीक समय पर किए गए कार्य तथा निर्णय के द्वारा प्रचारकर्ता अपनी नीतियों के लिए समर्थन बनाए रखता है-तथा समर्थन बढ़ाने के प्रयत्न करता रहता है। ठीक इस समय पर अनुकूल निर्णयों की घोषणा को भी, जबकि दूसरे राष्ट्र को उसकी अत्यन्त आवश्यकता हो या जब वह प्रचारकर्ता राष्ट्र पर निर्भर करता हो, प्रचार साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

3. अनुक्रिया प्राप्त करने की युक्तियां (Devices for Gaining Response)-प्रचारकर्ता द्वारा लोगों को देश-भक्ति, आत्मरक्षा एवं-न्यायप्रियता आदि भावनाओं को प्रभावित करके अपनी इच्छानुसार प्रतिक्रिया प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित तकनीकों अपनाई जाती हैं—

(i) प्रचारक लोगों के गर्व, प्रतिष्ठा, आकांक्षाओं तथा भावनाओं को उत्तेजित करते हैं जिनके द्वारा सम्बन्धित समुदायों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। नाये

(ii) नए नारों का निर्माण करते हैं जिससे लोगों में अनुकूल चेतना उत्पन्न हो जाती है। जैसे 'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व', 'राष्ट्रीय आत्म-निर्णय का अधिकार', 'दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ', ना प्रष्ये 'जनतन्त्र खतरे में है' आदि नारे विश्व राजनीति में प्रचलित रहे हैं।

(iii) प्रतीकों का प्रयोग जैसे-राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत आदि को प्रयोग में लाना। राष्ट्र के प्रतीकों का काम कभी-कभी राष्ट्रीय नेताओं और सामाजिक चिह्न के द्वारा भी किया जाता है। इतिहस में सबसे प्रभावशाली प्रतीका की भूमिका नाजी जर्मनी में स्वास्तिक ने निभाई। यह हिटलर के उद्देश्यों, आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का प्रतीक था तथा जर्मनी व्यक्ति बड़ी श्रद्धा और भक्ति भाव से इस प्रतीक की पूजा किया करते थे। विचारों प्रचार की यह विधि राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों के प्रयोग में लायी जाती है। हम प्रचारकर्ता देश-भक्ति, आत्म रक्षा एवं अन्य आधार पर भावात्मक नारों, प्रतीकों और साहित्य का प्रयोग करके अपने इच्छानुसार प्रतिक्रिया प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। लोकप्रिय नेताओं के नामों तथा उनके विचारों का प्रयोग भी जनता से अनुकूल प्रक्रिया प्राप्त करने के लिए साधन के रूप में किया जाता है। 1917-1991 के समय में 'मार्क्सवाद-लेनिनवाद" साम्यवादियों के लिए इकट्ठे होने का प्रेरणा स्रोत रहा। इसी प्रकार नेहरू-नासिर-टीटो के नाम तथा 'गुटनिरपेक्षता की नीति' तीसरे विश्व के बहुत से राष्ट्रों के लिए इकट्ठे होने का आधार बने रहे हैं।

4. स्वीकृति प्राप्त करने के साधन (Methods of Gaining Acceptance)-पामर तथा पर्किन्नर लिखते हैं- "प्रचारकर्ता तथा जिनमें प्रचार करना है, के बीच घनिष्ठता तथा ताल-मेल प्रोग्राम के लिए स्वीकृति प्राप्त करने का सबसे सफल साधन है। प्रचारक द्वारा ऐसे प्रयत्न किये जाते हैं जिनके द्वारा दूसरे राष्ट्र अपनी नीतियों को स्वीकृति प्रदान करें। प्रचारक जिस दुनिया को

प्रभावित करना चाहता है वह यह स्पष्ट करता है कि वह समुदाय उसे स्वीकार कर ले। प्रचारक और समुदाय में पूर्ण तालमेल स्थापित हो जाये। कभी-कभी लोग धर्म, जाति की विचारधारा का सहारा लेकर प्रचार विशेष समुदाय को अपनी ओर मिलाते हैं। हिटलर ने पश्चिमी देशों के जर्मन विरोध को पराजित करने के लिए साम्यवादी खतरे का नारा पसन्द किया था। आस्ट्रिया आदि को अपने अधिकार में करने के लिए हिटलर ने 'जर्मन नीति' से उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। (जापान ने पश्चिमी देशों के विरुद्ध एशिया के लोगों का समर्थन प्राप्त करने के लिए 'एशिया, एशियावासियों के लिए' का नारा दिया था। इस तरह के प्रचार में एक देश दूसरे देश के लोगों और सरकार के साथ मानसिक रूप से समानता पाते हैं। इस समानता को जाति, धर्म व क्षेत्र के आधार पर मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न करके प्राप्त करने का प्रयल किया जाता है। आम जनता में अपने आपको पहचान देने के लिए भारत के नेताओं द्वारा खादी का प्रयोग, पद यात्रा करना, किसी विशिष्ट क्षेत्र के पहरावे आदि का प्रयोग किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत अपने हितों को पहचान देने के लिए अपने आपको तीसरी दुनिया के अधिकारों को कट्टर समर्थक के रूप में प्रकट करता रहा है। पाकिस्तान द्वारा अपने आपको पूर्णतया इस्लाम के साथ मिला लेने के पीछे दूसरे मुसलमान राष्ट्रों की अनुकूल स्वीकृति प्राप्त करना रहा है।

इस तरह इन सभी तरीकों से प्रचारकर्ता अपने राष्ट्र के हितों को प्राप्त करने की कोशिश करता है। यह अपने उन साधनों के स्वरूप का निर्माण करता है जिनका इस उद्देश्य के लिए उन्हें प्रयोग करना होता है। ऐसा करते समय वे हमेशा अपने विश्व के बारे में विचार, दूसरों की नीतियों, स्वयं अपने हित तथा उन्हें प्रभावित करना है, उन लोगों का स्वभाव तथा चरित्र आदि उनका मार्ग-दर्शन करते हैं।

प्रभावशाली प्रचार की आवश्यकताएँ (The Requisites for Effective Propaganda)- प्रभावशाली प्रचार के लिए कई बातें जरूरी होती हैं, जैसे उसकी सरलता, रुचि, उप-उपयुक्ता आदि। प्रचार को अपना विशेष उद्देश्व प्रभावी रूप से प्रचारित करने के लिए समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, सामूहिक विश्लेषण आदि का सहारा लेना होता है। श्रोताओं पर प्रभाव डालने के लिए प्रचारित विषय को देखने, सुनने और पढ्ने योग्य बनाया जाए) इसका सरल तरीका यह है कि खबरों तथा सूचनाओं को यथा सम्भव वस्तुनिष्ठ तथा तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाए और श्रोता अथवा पाठक को स्वयं ही अपने निर्णयों पर पहुँचने के लिए अवसर प्रदान किया जाए। सीधी और बिना मिलावट के सूचना राजनीतिक दृष्टि से प्रभावकारी होती है। इसका प्रभाव उस समय और भी अधिक होता है जबकि यह उन सर्वाधिकारवादी राज्यों पर प्रभाव डालती है जो सूचना को नियन्त्रित रखते हैं। वस्तुनिष्ठ एवं तथ्यात्मक सूचना का लाभ यह है कि श्रोता उसे यह जानने के लिए सुनना चाहते हैं कि उन्होंने जो भी खबरें सुनीं हैं उनमें सत्य का कितना अंश है।

प्रचार-कार्य को प्रभावशाली बनाने की एक तकनीक यह है कि कोई बड़ा झूठ बोला जाए और उस झूठ को बार-बार दोहराया जाता है तो जनता उसमें विश्वास करने लगती है। अधिकांश जनता में यह समझने की कल्पना नहीं होती कि बार-बार दोहराए जाने वाले कथन पूर्णतः सत्य नहीं होते। इस तकनीक को प्रभावकारी बनाने के लिए विभिन्न स्रोतों पर नियन्त्रण रखना जरूरी है ताकि परस्पर विरोधी बातें सामने न आएं।

जनता के मस्तिष्क पर सीधे-सीधे नारों का अधिक प्रभाव होता है। वह विभिन्न राजनीतिक एवं आर्थिक विचारधाराओं के तुलनात्मक गुणों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क सुनने की अपेक्षा सरल नारे सुनना अधिक पत्तन्द करती है। जैसे-'सामान्य और पूर्ण निशस्त्रीकरण', 'बम पर रोक लगाओ' तथा पूँजीवादी, साम्राज्यवादी आदि।

प्रचार उस समय तक प्रभावहीन रहता है जब तक कि वह सुनने वालों को रुचिकर न लगे। एशिया और अफ्रीका के जिन देशों का सम्बन्ध आर्थिक विकास एवं राष्ट्रीय निर्माण में है वहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका जब साम्यवाद को रोकने पर जोर देता है तो इन देशों पर इसका प्रभाव नहीं होता। किसी विषय पर लोगों की रुचि उतनी ही कम हो जाती है जितने कि वे उससे दूर हैं। दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका के सूचना-अभिकरण हेएक प्रकाशन में अफ्रीका से सम्बन्धित लेख छपते हैं और अफ्रीकी पाठकों को यह अनुभूति देते हैं कि अमेरिका उनके मामलों में रुचि लेता है। प्रचार-कार्य को रुचिपूर्ण बनाने के लिए प्रदर्शन और दृश्य भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

यदि प्रचार का विषय बनावटी है और झूठी प्रकृति का है तो उसके प्रायः वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकते। प्रचार भी दीर्घकालीन नीति के साथ संयुक्त होना चाहिए। किसी भी प्रचार पर तब विश्वास किया जाता है जब उसके अनुसार कार्य भी

किया जाए।

प्रचार-कार्य लोगों का अपनी ओर ध्यान ही आकर्षित नहीं करना चाहता बल्कि उसकी प्रतिक्रिया भी चाहता है। प्रचारक जिनको प्रभावित करना चाहता है, उनकी स्थानीय रुचियों, अनुभवों तथा दृष्टिकोण का ध्यान रखकर अपने और उनके बीच की दूरी को मिटाता है। एक प्रभावशाली विचार वह है जो सामान्य विशेषताओं और सामान्य रुचियों पर जोर देता है।

जॉसफ क्रफल का यह कहना उपयुक्त है कि "प्रचार का प्रभाव उसकी निरन्तरता एवं स्थिरता के कारण बहुत बढ़ जाता है। साथ ही सूचना के प्रतियोगी स्रोतों को समाप्त कर देना भी उपयोगी रहता है।" प्रजातान्त्रिक सरकार को अपना प्रचार प्रभावी बनाने के लिए अपने कथनों की सत्यता वास्तविक कार्यों से सिद्ध करनी चाहिए।

प्रचार के उपकरण (The Instruments of Propaganda)-प्रचार-कार्यक्रम के लक्ष्य अथवा उद्देश्य अनेक होते हैं और ये कर्ता के उद्देश्य के आधार पर समय-समय बदलते रहते हैं। प्रचारक के उद्देश्य के आधार पर ही उसका रूप भी निश्चित किया जाता है। प्रचार के विभिन्न रूपों और प्रकारों में से कुछ ये हैं-

(1) रेडियो व टेलीविजन (Radio and Television)-रेडियो और टेलीविजन ने प्रचार कला को अत्यन्त व्यापक बना दिया है। आजकल पर्याप्त शक्तिशाली तथा दूरी तक प्रभाव डालने वाले ट्रॉसमीटर बन चुके हैं जिनकी सहायता से प्रचार की नीतियों के अनुसार विभिन्न धाराओं पर समाचार और मत प्रेषित किए जाते हैं। चार्ल्स थेयर ने अपनी पुस्तक 'डिप्लोमेंट' में 'रेडियो राजनय' (Radio Diplomacy) शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् रेडियो के माध्यम से प्रचार द्वारा अपनी विचारधारा का प्रसार। सिसले हडलेस्टन का मत है कि भले ही रेडियो का आविष्कारक कोई भी क्यों न हो, परन्तु इसका वास्तविक आविष्कारक हिटलर है, जिसने रेडियो का प्रचार के लिए खूब उपयोग किया। हडलेस्टन के अनुसार- "राष्ट्रीय स्तर पर जनसमुदाय को प्रभावित करने वाले उपकरण का नैतिक और राजनैतिक आविष्कारक हिटलर या जिसने रेडियो का प्रभावकारी ढंग से प्रयोग किया।" विकसित देश इसका खुलकर प्रयोग कर रहे हैं। वर्तमान वैज्ञानिक यन्त्रों के कारण टेलीविजन द्वार प्रचार विदेश नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण और आवश्यक अंग बन गया है।

(2) सांस्कृतिक प्रोग्राम (Cultural Programmes)- विभिन्न राष्ट्रीय सरकारें तथा उनकी जनता को प्रभावित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन सांस्कृतिक प्रोगाम है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत विभिन्न राज्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को वैठाने के लिए विभिन्न देशों में अपने देश के सांस्कृतिक मण्डल भेजते हैं जो नृत्य, संगीत, चलचित्र, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित होते हैं। सांस्कृतिक प्रतिनिधि-मण्डल अपनी प्रगति और सम्पन्नता का प्रदर्शन करते हैं। उसी प्रकार स्वागतकर्ता देश भी प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों को अपनी प्राप्तियों से प्रभावित करता है। दोनों एक-दूसरे में अपने प्रति स्वामिभक्ति और मित्रता बढ़ाने के पूरा प्रयास करते हैं। कभी-कभी कुछ देश अपनी संस्कृति के प्रभाव के लिए परदेश में पुस्तकालय तथा सूचना केन्द्र भी खोलते हैं। भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका के पुस्तकालय दिल्ली, बम्बई, हैदराबाद, कोलकाता आदि शहरों में हैं। सांस्कृतिक क्षेत्र में फ्रांस सबसे अधिक धन खर्च करता है।

(3) प्रेस तथा फिल्म (Press and Film)-राजनय के प्रेस के महत्त्व का मूल्यांकन करना कठिन है। प्रेस द्वारा एक राष्ट्र के जनमत की अभिव्यक्ति होती है। प्रेस जनमत निर्माण करने, परिवर्तित करने तथा रूप देने का कार्य भी करता है। प्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव तथ इसके माध्यम से प्रचार के लाभ को देखते हुए विश्व के सभी दूतावासों में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाती है, जिसे प्रेस अताशे अथवा सहचारी कहते हैं। इसके अनेक कार्य हैं। इसके प्रमुख कार्य स्थानीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन कर, उनका अपने देश की भाषा में अनुवाद कर, अपने देश पने देश से सम्बन्धित सूचनाओं को राजदूत तक पहुँचाना है। वह स्थानीय पत्रकारों आदि सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएँ एकत्रित करता है। इसी के साथ अपने देश की सूचनाएं देने का भी प्रमुख स्रोत होता है। एक प्रभावशाली समचार-पत्र किसी नेता को चढ़ा या गिरा सकता है।

(4) आर्थिक और सैनिक सहायता (Economic and Military Aids)-आधुनिक राजनय का एक नया स्वरूप सहायता का राजनय है, यह दिन-प्रतिदिन प्राथमिकता पाता जा रहा है। विकासशील देश आर्थिक सहायता देकर जहां अवकसित देशों के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हैं वहीं उस सहायता को वे स्वीकारी राज्य तथा उसके बाहर खूब प्रचार भी करते हैं। कुछ विद्वानों का विश्वास है सहायता प्रचार से भिन्न है, हालाकि इसमें प्रचार की पुट रहता है। मागाँयो ऐसी सहायता के लिए दो शर्तों

की पूर्ति आवश्यक मानता है। "प्रथम यह है कि अन्तिम स्थिति में यह उन लोगों को लाभदायक सिद्ध हो, जिनके लिए वह निर्दिष्ट है और सहायता प्राप्तकर्ता तत्काल उसकी उपयोगिता के प्रति अश्वस्त हो, और द्वितीय सहायता ग्रहण करने वालों को सहायता के विदेशी स्रोत का पता होना चाहिए। वस्तुतः ऐसी स्थिति में प्रचार काम में आता है और उसके प्रभाव के अन्तर्गत प्राप्तकर्ता देश उस विदेशी एजेन्सी को मान्यता देता है जिससे यह सहायता आती है।" इस प्रकार की सहायता के पीछे पूर्णतः जनहित की भावना कम और स्वार्थ तथा प्रचार अधिक रहता है। पाकिस्तान को सैनिक सहायता देकर अमेरिका पाकिस्तान में अपने सैनिक अड्डे स्थापित करने, मित्रता प्राप्त करने और अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहा है।

(5) चयन द्वारा तथ्यों को मोड़ना (To Distort the Facts Through Election)-जब कोई राष्ट्र विदेशी जनमत को एक विशेष रूप देना चाहता है तो वह तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर उसके सामने प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की संचार व्यवस्था में ईमानदारी जैसी चीज नहीं रहती और रणनीति की दृष्टि से कभी भी झूठ को अपनाया जा सकता है। इस प्रकार प्रचार के दो मार्ग दिखाई देते हैं। एक मार्ग यह है कि झूठे तथ्यों को सामने लाए जाए और दूसरा यह है कि झूठे तथ्यों को प्रचारित किया जाए। इन दोनों के बीच का भी एक मार्ग होता है और वह यह कि झूठ तो न बोला जाए लेकिन कुछ तथ्यों को छिपा लिया जाए ताकि लोग सत्य को समझ न सकें। इस मार्ग को अपनाकर प्रचारक उन तथ्यों पर अत्यधिक जोर देता है जो सत्य तो हैं किन्तु उसके पक्ष में हैं। दूसरी ओर वह उन तथ्यों की ओर से श्रोताओं का ध्यान हटा देता है जो सत्य होते हुए भी उसके पक्ष में नहीं हैं। प्रचार द्वारा भावनात्मक व्याख्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जिनको प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार का प्रचार विदेशों में दृष्टिकोण को ढालने के लिए तथा दूसरों पर दबाव डालने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(6) प्रदर्शन (Demonstrations)-राजनय की सहायक तकनीक के रूप में आधुनिक युग में प्रदर्शन का-प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। विश्व प्रदर्शनों में भाग लेकर देश अपने आर्थिक व औद्योगिक विकास का प्रदर्शन करते हैं। भारत द्वारा अणु विस्फोट और आर्य भट्ट उपग्रह का छोड़ना, उसके तकनीकी ज्ञान का द्योतक है। इस प्रकार प्रदर्शन राज्य को अपना प्रभाव स्थापित करने, अपनी शक्ति का प्रचार करने तथा राजनयिक दृष्टि से मित्रता करने में सहायक होते हैं।

(7) आदर्शवादिता का प्रचार (Propaganda of Idealism)- राज्य विचारधारा को आधार बनाकर भी दूसरे देशों पर वांछित प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं। पश्चिमी देश स्वतन्त्रता को आवश्यकता एवं महत्त्व का प्रचार करके अपने विश्वासों एवं मान्यताओं को दूसरे देशों द्वारा स्वीकृति कराने का प्रयास करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय युवक समारोहों में प्रचार माध्यमों के कार्य क्षेत्र को व्यापक बनाया जाता है।

(8) सूचना विभाग (Information Department)- सभी राज्य अपने दृष्टिकोण पर राज्य के समक्ष रखने के लिए उपयुक्त साधनों के साथ-साथ अपने देश के दूतावासों में सूचना विभाग, सूचना केन्द्र, वाचनालय आदि खोलकर स्वीकारी राज्य की जनता को प्रेषित राज्य की प्रगति आदि से सूचित करते हैं तथा अपना दृष्टिकोण उनके समक्ष रखकर उन्हें प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। राजनेताओं की जीवनी, सशक्त, पुस्तकें, कार्टून आदि भी प्रचार के ही साधन हैं। अमेरिकी सूचना सेवा के डाइरेक्टर जार्ज एलन ने ठीक ही कहा था कि - "अच्छी विदेश नीति व अच्छा प्रचार सहगामी चलते हैं।"

17. यौद्धिक राजनय [WARRIER DIPLOMACY]

निम्नलिखित पर टिप्पणी करें-

(अ) सर्वाधिकारवादी राजनय (a) Totalitarian Diplomacy

(ब) दुकानदार जैसा राजनय बनाम यौद्धिक राजनय (b) Shop-keeper Diplomacy Vs Warrier Diplomacy

(स) प्रचार द्वारा राजनय (c) Diplomacy by Propaganda]

उत्तर- (अ) सर्वाधिकारवादी राजनय (Totalitarian Diplomacy)-बीसवीं शताब्दी में सर्वसत्तावादी शासनों के उदय ने

सर्वसत्तात्मक राजनय को विकसित किया जो इन राष्ट्रों द्वारा अपने हितों को दूसरे पर लादने के लिए प्रयुक्त किया गया। सर्वसत्तात्मक राज्यों ने व्यक्ति को अपने अधीन कर लिया तथा युद्ध विजय और विस्तार को राज्य के प्राकृतिक अधिकार कहकर गौरवान्वित किया। विस्तारवादी नीतियां, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा राजनय पर अपना गहरा प्रभाव रखती थीं। वे राजनय का प्रयोग अपने विचारों को विदेशों में भेजने और अपने स्वार्थी हितों को दूसरों पर थोपने के लिए करते थे और इस प्रक्रिया में वे पुरानी राजनीतिक मानदण्डों, न्यायाचार एवं कार्यविधि पर बहुत कम ध्यान देते थे। वे अपनी आक्रामक नीतियों को छुपाने के लिए प्रचार का सहारा लेते थे और दूसरे सभ्य राष्ट्रों को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृति कर देते थे। उन्होंने दूसरे राष्ट्रों को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयात्त किए। ऐसा करने के लिए उन्होंने अपने राजनयज्ञों से गुप्त एवं कपटी एजेण्टों, दोहरे व्यवहार एवं जासूसी का काम लिया। उनका काम शान्तिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए काम न करके सहमति की अपेक्षा असहमति पैदा करना और बढ़ते हुए सर्वसत्तात्मक संकट से दूसरे राष्ट्रों के नेताओं तथा लोगों को कमजोर करना था। सर्वसत्तात्मक राजनय का उद्देश्य राष्ट्रों की बीच संकटमयी तथा तनावपूर्ण सम्बन्ध कायम करना था। एक सर्वसत्तात्मक राज्य के राजनय को बड़े देश की नजर से देखा जाता है। राजनयिक समझौता वार्ताएं प्रायः सम्बन्धों को तोड़ देती हैं। इटली के फासीवादी शासकों को और जर्मनी के नाजीशासकों ने अन्तर्युद्ध काल में सर्वसत्तात्मक राजनय का ही प्रयोग किया। इसका परिणाम यह निकला कि व्यवस्था भंग हो गई और दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्धोत्तर काल के आरम्भिक वर्षों में भी बहुत से तानाशाह एवं अधिनायकवादी शासक सर्वसत्तात्मक राजनय का अब भी प्रयोग करते रहे हैं, लेकिन 1950 के दशक के मध्य में सर्वसत्तात्मक राजनय की व्यर्थता को अनुभव कर लिया गया और नये राजनय के पक्ष में इसका त्याग कर दिया गया।

इस राजनय की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं-

(1) यह राजनय विचारधारा (Ideology) का आधार बनाकर आगे बढ़ता है तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जातीय गौरव, भौतिकवाद, सैनिकवाद आदि का सहारा लेता है।

(2) सर्वसत्तावादी राजनयज्ञों का मूल उद्देश्य शान्तिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का निर्माण करना न होकर अपनी विचारधारा का प्रसार करना है। इसके लिए दूसरे देशों में वे विशेष दलों का निर्माण एवं समर्थन करते हैं।

(3) सर्वसत्तावादी राजनीतिज्ञ राजनय के सामान्य नियमों का पालन तभी तक करते हैं जब तक वह उनकी योग्यताओं से मेल खाते हैं।

(4) उनके मतानुसार किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि एवं समझौते को इच्छानुसार तोड़ा या भंग किया जा सकता है।

(5) ये राजनयज्ञ प्रचार करते हैं कि विरोधी विचारों एवं हितों वाले राज्यों के बीच संघर्ष एवं मतभेद स्थायी है।

(6) सर्वाधिकारवादी राज्यों के सम्बन्ध प्रायः बड़े भेदपूर्ण एवं संघर्षपूर्ण होते हैं, कभी-कभी तो इतने कि उनके साथ राजनयिक व्यवहार तक असंभव बन जाता है। कभी दूतों और पत्रकारों का निष्कासन चालू हो जाता है और कभी शिखर वार्ताएं होने लगती हैं। उनके साथ व्यवहार करने में प्रजातन्त्रात्मक शब्दों को हरदम सावधान और समद्ध रहना पड़ता है क्योंकि उनके लिए समूची राजनीति, चाहे वह राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय, सत्ता पर ही आधारित होती है। वे सत्ता-धर्म ही पुजारी होते हैं और सत्ता ही उनका यथार्थ तथा चरम मूल्य होती है।

(ब) दुकानदार जैसा राजनय बनाम यौद्धिक राजनय (Shop-keeper Diplomacy Vs Warrior Diplomacy)-यदि हम विभिन्न देशों के राजनय पर दृष्टि डालें तो विदित होगा कि उन सब की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। निकलसन (Nicolson) ने ग्रेट ब्रिटेन के राजनय में वे सभी गुण पाए हैं जो किसी व्यापार में पाए जाते हैं। जो राजनय बुद्धिपूर्ण समझौते करने को तैयार रहता है, दूसरे राष्ट्रों के साथ प्रेम बढ़ाता है तथा विभिन्न सन्धियों द्वारा शान्ति-निर्माण में प्रवलशील रहता है, वही राजनय व्यवहार में वांच्छित परिणामों को कर पाता है। एक दुकानदार जैसी यह कूटनीति महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक होती है क्योंकि यह अन्य रूपों की अपेक्षा अधिक नैतिक है तथा उन रूपों की तुलना में अधिक सफलता प्राप्त करने में समर्थ रहती है। किसी देश की सफलता एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाज में उसका स्थान मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करता है, वह देश किस प्रकार का राजनय अपना रहा है, उस देश की राष्ट्रीय नींव कैसी है तथा समझौताकर्ताओं का व्यक्तित्व कैसा है। राजनय का दूसरा

युद्धप्रिय रूप है। योद्धा राजनय दुकानदारी राजनय का उलटा है। भावुकतावाद, अहंकार तथा स्वेच्छाचार इसकी विशेषताएं होती हैं तथा इसमें युक्ति तथा सहनशील के लिए कोई जगह नहीं होती। यौद्धिक राजनय राजनयिक न्यायाचार तथा व्यवहार की ओर बहुत कम ध्यान देता है। यह सिद्धान्त तथा शैली में आक्रामक तथा विस्तारवादी होता है। यह अपने हितों को धमकियों, अभिन्नातों, दबावों, शक्ति तथा विनाश द्वारा दूतरों पर थोपने का प्रयत्न करता है। इसका उद्देश्य होता है अपनी शर्तों को दूसरों पर लादना तथा सौदेबाजी के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ना शिष्टाचार तथा नम्रता के आदर्श को कमजोरी का चिह्न माना जाता है तथा इसीलिए इसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। मुसोलिनी ने खुले रूप से अपने कूटनीतिज्ञों को बताया था कि वह इन दोनों आदशों से घृणा करता है। इसके आदर्श लगभग वही हैं जो सर्वसत्तात्मक का राजनय के हैं। इसकी आक्रामकता इसे बड़ा सक्रिय बना देती है। शीघ्र निर्णय थोपने की इसकी योग्यता के कारण यह चतुर तथा परिवर्तनशील दिखाई देता है। तयापि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में यह प्रायः कड़वाहट तथा प्रतिक्रिया ही पैदा करता है। इसका झगड़ा वास्तविक व्यवहार में तीखी प्रतिक्रिया पैदा करता है।

दुकानदार जैसी एवं युद्धप्रिय कूटनीतियों के बीच अनेक भिन्नताएँ हैं। दोनों की विशेषताएं परस्पर विरोधी है (जो देश की व्यवस्था को यथास्थिति में रखने के पक्ष में हैं वे पहली को, दुकानदार जैसी कूटनीति को अपनाते हैं) और (देश की यथास्थिति को चुनौतियां देते हैं तथा बदलने की राह में रहते हैं वे युद्धप्रिय नीति को अपनाते है) पश्चिमी प्रजातन्त्रों में दुकानदार जैसी कूटनीति की सभी विशेषताएं वर्तमान में हैं। दूसरी ओर साम्यवादी देशों की कूटनीति में युद्धप्रियता का आभास मिलता है विशेषतः साम्यवादी चीन की कूटनीति में।

दोनों ही प्रकार की कूटनीतियों का आधार परिस्थितियाँ, राज्य का स्वरूप एवं विचारधारा है, अतः दोनों का ही अपना महत्त्व है। दुकानदार जैसी कूटनीति को क्रियान्वित करते समय ब्रिटेन ने कई बार चातुर्य, कुशलता एवं कपट से काम लिया है। इसमें उसे सफलता भी मिली है और असफलता भी। कोई राष्ट्र राजनय के किस रूप को अपनाता है तथा उस रूप को अपनाने में उसे कितनी सफलता प्राप्त होती है इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसका क्या स्थान है और उसकी शक्ति कितनी है। प्रारम्भ में ब्रिटेन का राजनय सफल रहा था, इसका कारण उसकी शक्ति थी। मिस्र के मामले में उसे पीछे हटना पड़ा, इसका कारण यह था कि अब वह दूसरी श्रेणी की शक्ति रह गया है।

यौद्धिक राजनय तथा दुकानदार राजनय के बीच **मुख्य अन्तर** इस प्रकार हैं-

(1) जब हम यौद्धिक राजनय की दुकानदार राजनय से तुलना करते हैं तो यह पाते हैं कि दुकानदारी स्वरूप राजनय की एक बहुत अच्छी शैली है। दुकानदार राजनय गुणों तथा शान्ति के लिए कार्यों की एक रूपता, सद्भावना तथा समझौतों का प्रतिनिधित्व करता है जबकि यौद्धिक राजनय के निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में, अहंकार, लादना, बल, दबाव तथा स्वार्थी हित।

(2) यौद्धिक राजनय जब समझौता करने बैठता है तो अविवेकपूर्ण (Unreasonables) बन जाता है। क्योंकि विवेक से सोचने पर यथास्थिति को बदला नहीं जा सकता। इसके विपरीत दुकानदार राजनय बुद्धिमत्तापूर्ण समझौते करता है।

(3) प्रभावशाली देशों की माँग थोड़ी तथा बुद्धिपूर्ण होती है। वे यथास्थिति व्यवस्था से सन्तुष्ट रहते हैं और इसलिए शक्ति के प्रयोग के प्रत्येक रूप को बुरा समझते रहते हैं और समझौता को आवश्यक समझते हैं। इसके विपरीत चीन जैसे देश युद्ध को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति का आवश्यक साधन मानते हैं।

(4) प्रभावशाली देशों का (जो यथास्थिति-व्यवस्था के पक्षधर हैं) राजनय अस्पष्ट रहता है। उनके राजनयिक समझौतों का कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं होता।

(5) प्रभावशाली देश ऐसी किसी चीज की मांग नहीं करते जो उनके पास नहीं है। साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि दूसरे देश भी उन चीजों की माँग न करें जो उनके पास नहीं हैं। ये देश स्थित विश्व-व्यवस्था से सन्तुष्ट रहते हैं, अतः स्पष्ट नहीं जान पाते कि उनकी आवश्यकताएं क्या हैं?

(6) यौद्धिक राजनय को अपनाने वाले देशों के कुछ निश्चित लक्ष्य होते हैं। वे वर्तमान को बदलकर अपने अनुकूल विश्व का निर्माण करना चाहते हैं जहां उनके हितों को सन्तुष्ट किया जा सके। इस नए विश्व का मानचित्र उनके मस्तिष्क में रहता है।

(7) यौद्धिक राजनय अपनाने वाले देश प्रायः गरीब, दुर्वल तथा असन्तुष्ट होते हैं। शक्ति के अभाव में उनको राजनयिक सफलताएं कम मिल पाती हैं, विश्व समाज में भी उनका स्तर अधिक ऊँचा नहीं उठता। यही कारण है कि वे वर्तमान व्यवस्या को बदलने के लिए युद्ध और संघर्ष का सहारा लेते हैं, अविवेकपूर्ण समझौतों द्वारा आगे बढ़ते हैं। दुकानदार जैसा राजनय अपनाने वालों का स्वभाव इसके विपरीत होता है।

(स) प्रचार द्वारा राजनय (Diplomacy by Propaganda)- राजनयिक निर्णयों अपने हितों के अनुकूल वनाने में प्रचार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। रेडियो, टेलिविजन, प्रेस तथा प्रचार के अन्य साधनों द्वारा जनता को एक विशेष नीति के सम्बन्ध में प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। जार्ज वी. ऐलन (George V. Allen) के मतानुसार प्रचार राजनय का एक सचेतन (Conscious) हथियार बन गया है। बिस्मार्क द्वारा इस हथियार का प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता था। ब्रेस्ट लिटोवस्क (Brest Litovosk) में ट्राटस्की ने भी समझौते के तरीके के रूप में प्रचार का प्रयोग किया था। बाद में यह व्यवस्था साधारण बन गई तथा अनेक देश इसे अपनाने लगे।

राजनय में प्रचार दो प्रकार से सहायक बनता है-

(i) प्रचार द्वारा समझौते पर विचार करने योग्य वातावरण तैयार किया जाता है।

(ii) जब समझौता हो रहा है तो उसे प्रभावित करके अपने हित के अनुकूल बनाया जाता है।

जहाँ तक पहले कार्य का सम्बन्ध है, प्रचार उपयोगी है और इसलिए प्रत्येक देश प्रकाशन एवं प्रचार पर बहुत धन खर्च करता है किन्तु दूसरे कार्य का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रचार बहुत कम ही सफल हो पाता है। प्रचार-कार्य मुख्य रूप से विदेश-मन्त्री या अन्य राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाता है न कि कूटनीतिज्ञों द्वारा। यद्यपि प्रचार के द्वारा जनता में अनेक मिथ्या, विश्वास एवं भ्रम पैदा होते हैं, किन्तु आज की परिस्थितियों में यह अपरिहार्य बन गया है। पन्निकर ने समझौते (Negotiation) को एक गुप्त प्रणाली माना है। उसके मतानुसार जिस समय समझौते चल रहे हों उस समय प्रचार बड़ा खतरनाक होता है।

प्रचार द्वारा प्रत्यक्ष रूप से राजनय को क्रियान्वित किया जाता है। पामर तथा पार्किस के कयानुसार- "राजनय में प्रचार के समस्त साधनों का पूरा प्रयोग सर्वाधिकारवादी राज्यों में किया जाता है।" पीकिंग द्वारा यह साधन पूरी शक्ति से अपनाया जाता है। राजनय के व्यवहार पर इसका जो प्रभाव पड़ता है उसको अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इसे एक उच्च स्थान प्रदान किया है। युद्ध के समय प्रचार का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। शान्ति और संघर्ष प्रत्येक अवस्था में प्रचार का अपना उपयोग है।